अबरक के फूल

नेशनल
पब्लिशिंग
हाउस
२६ दरियागंज नयी दिल्ली-११०००२

योगेश गुप्त
अबरक के फूल

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२३ दरियागंज नयी दिल्ली-११०००२

शाखाएं
चौड़ा रास्ता जयपुर
३४ नेताजी सुभाष मार्ग इलाहाबाद-३

ISBN 81 214-0381 2

मूल्य ४० ००

नेशनल पब्लिशिंग हाउस २३ दरियागंज नयी दिल्ली ११०००२ द्वारा प्रकाशित/द्वितीय संस्करण १९९०/सर्वाधिकार श्री योगेश गुप्त/सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस ए-९५ सेक्टर ५ नोएडा २०१३०१ में मुद्रित।

ABRAK KE PHOOL (Stories) by Yogesh Gupt Rs 40 00

अबरको मृग को

क्रम

प्रलाप

मैं धीरे धीरे मर रहा हू। सभी धीरे-धीरे मरते हैं। कुछ ही होशियार लोग होते है जो अचानक मर जाते हैं या मरने का फैसला करते हैं—और मर जाते है। इन सब लोगो के पास जीने के कारण होते हैं। मेरे पास जीने का कोई कारण नही है। यानी मैं जिन्दगी भर जीने का कारण ढढता रहा हू और इसीलिए शायद धीरे धीरे मर रहा हू। धीरे धीरे मरने का कारण कोई न कोई तलाश होती है। यह पता हो कि तलाश तो जिन्दा रहेगी, पर मिलेगा कुछ नही तो मरने की गति और धीमी हो जाती है। धीमी चाल से मौत की तरफ रेंगना बहुत त्रासदायक है। पर यह भी सच है कि इस रेंगते हुए आदमी को हर त्रास कही-न-कही सुख का आभास भी कराता है।

तुम्हे एक बात बताऊ—तुम नही मरोगी। कही किसी कोने मे हमेशा जिन्दा रहोगी। रोशनी हमेशा जिन्दा रहती है। जो रोशनी ढोता है, वह घुल घुलकर मर जाता है—धीरे धीरे। घुलती मोमबत्ती देखी है कभी। रोशनी को कन्धे पर लादे कैसे आखिरी सास तक खडी रहती है। घुल घुल कर छोटी होती जाती है। कन्धे जलते जाते हैं, झुकते जाते हैं, पर लौ को कन्धे पर से गिरने नही देती। एक का कन्धा पूरी तरह टूट जाता है तो लौ को दूसरी, पूरी मोमबत्ती के कन्धो पर चढाकर ही दम तोडती है। तुम कहोगी, यह लौ की प्रकृति है कि सिर ऊचा करके खडी

रह। वह किसी के कन्धो की मोहताज नही। मैं मानता हू हर रोशनी की लपट बहुत स्वाभिमानी या शायद दम्भी होती है पर किसी भी लौ या लपट को यह नही भूलना चाहिए कि मोमबत्ती के शरीर से उग, उसमे बिधे धागे की बलि ही उसे लौ बनाती है। मोम शरीर बिधवाता है, अरे पूरे शरीर को गलाता है और रोशनी को रोशनी कहलाने की सुविधा देता है। पर रोशनी

हा यह सच है सबका अपना अपना स्वधर्म है। लोग कहते है—'मोमबत्ती जल रही है' और कि रोशनी हो रही है। यानी मोमबत्ती का अस्तित्व मिट रहा है और रोशनी का अस्तित्व है। सुनो मेरे हमदम, मैं जल रहा हू और मेरा जलना ही इस बात का प्रमाण है कि तुम्हारी रोशनी मेरे अन्दर है। मैं जानता हू, तुम्हारा और मेरा सम्बन्ध इतना ही है कि मैं अपना अस्तित्व मिटा रहा हू और तुम्हारे अस्तित्व को सिद्ध कर रहा हू। मैं अपनी रोशनी के सामने नतमस्तक हू। उसकी हर शर्त मानने को मजबूर हू। उसका सिर ऊचा रखना मेरे जीवन का स्वाद है। पर क्या तुम इतना भी नही जानोगी कि अपना शरीर गलाकर अपने मूर्त को मिटाकर जब कोई दूसरे के अमूर्त को सीचता है तो उसके अन्दर की कितनी चरबी, जलकर बदबूदार गैस बनकर, वातावरण को दूषित करती है और तुम्हे मालूम है कि इस गैस से कभी कभी पूरा वातावरण जल उठता है। पूरे विस्तार मे आग लग जाती है।

पर एक गलती हो गई दोस्त। अपने मूर्त को मिटाकर कोई दूसरे के अमूर्त को नही सीचता। अपने मूर्त को मिटाकर सब अपने ही अमूर्त को सीचते हैं। प्रत्येक मूर्त अपना अमूर्त अपने से बाहर खोजता पाता है। उसमे अपना बिम्ब देखता है, फिर उसे सीचता है। यह प्रक्रिया खुद से चलकर खुद पर खत्म होती है। या यो कहो कि खुद और खुद के बीच चक्राकार घूमती है। सुनो, कुछ बता सकती हो क्या इसी को प्रेम कहते हैं? खुद को या खुदी को गलाकर किसी और मे दीखते खुद के बिम्ब को खुदा बना देना ही क्या प्रेम है? अपने छोटे दायरे को दूसरे की बाहो के बडे दायरे मे फेंक देना ही प्रेम है? पर फिर गलती हो गई। अपने 'दूसरे', ये शब्द भ्रमात्मक हैं। बस, छोटे दायरे का बडे दायरे मे झोक देने, एक

दायरे के अस्तित्व को अनास्तत्व म बदल देने को हो तो [illegible] हैं।
मोम को अपने मे से पैदा हुई विश्व रूपा लौ से [illegible] होती है। खुद को
गलाकर वह उसे पोसता है रोशनी बनाता है [illegible]

लो, बीच में एक बात याद आ गई शायद सुनन म तुम्ह ऊब हो।
पर उसे सुनाये बिना यह बात भी तो पूरी नही होगी। इसीलिए सुन लो।
सोना नही। किसी एक कहानी के पूरा होने मे ऊब के चबच्चे तो आते ही
हैं। उन्हे लाघ जाना। मन खराब मत करना। मन खराब हो जाता है
तो कहानी के मतलब ही बदल जाते है और यह तो तुम भी मानती होगी
कि कहानी स ज्यादा महत्वपूण कहानी का अथ होता है— हा कहानी के
अथ की बात ही तो कर रहा था

पता नही कितने हजार साल पहले की बात है। तुम्हारी मेरी कुछ
मुलाकातें हो चुकी थी। मुझे वह सब याद है। ऐसे ही जसे किसी पहली
रात का देखा सपना याद होता है। पानी पर तिरमिराते तेल की तरह।
भूत तिरमिराता होता है। सकडो हजारो छोटे छोटे टुकडो का, अलग
अलग स्वरूप के टुकडो का, एक पानी पर तिरमिराना कहानी बनाता है,
न कि उन टुकडो को जोड जोडकर किसी एक आकार मे गढने का जाली
पन। कहा जुड पाते है टुकडे, कहा बन पाता है आकार ? हम उन्हे अपने
मन से जोड लेते हैं। एक काल्पनिक आकार मे फिट कर लेते है। उनकी
मूल प्रकृति—तिरमिरान—की हत्या कर देते हैं। और इस तरह एक झूठी
कहानी अपने सुननेवालो को सुनाते है। मैं भी वह छल कर सकता हू।
पर तुमसे नही। छल करने का अपना एक मजा है। पर उसका एक वक्त
होता है और फिर इतना निमम मैं नही हू कि अपनी ही तरह धीरे
धीरे मरने वाले आदमी से छल करू। तुम्हे भी तो याद होगा ही तब
क्या हुआ था वह कुछ हजार साल पहले या शायद रात के देखे
सपने म

धरती के समूचे विस्तार पर पानी फल गया है तेज बहता पानी
बहाव के साथ बहना का मुझे शौक है नाव म चप्पू कभी नही
रखता चप्पू नाव को दिशा दे देते हैं, आदमी को कायर बना देते हैं
पानी पर छोटी-सी नाव हो और दूर दूर तक धरती दिखाई दे इसका

अपना ही एक 'थ्रिल' है नाव में पड़े रहो नाव बहती रहे सूरज निकलता डूबता रहे रात का ऊपर से सपने बरसते रहे चेतना पर इतिहास और भावी इतिहास गड्डमड्ड होकर तिरमिराता रहे बड़ा अमानवीय सुख मिलता है उस दिन, नहीं उस रात यही सुख ले रहा था कि महसूस किया कि बहते बहते नाव रुक गई है मुंदी आंखों पर हवा का स्पर्श कुछ थामा कुछ कोमल हुआ तो नाव का रुकना मुझे महसूस हुआ

मैंने आंखें खोल दीं नाव नदी के एक मोड़ पर किनारे पर कट धरती के एक टुकड़े में धंसी पड़ी थी और उस धरती के टुकड़े पर तुम खड़ी थीं चारों तरफ पानी के अथाह उच्छ्वल विस्तार के बीच अकेले अनमन पड़े इस धरती के पथरीले टुकड़े पर खड़ी थीं तुम खुले लहराते बाल आसमानी रंग की साड़ी में लिपटा मोतिया शरीर हवा की ज़िद से लड़ रही थीं तुम हवा तुम्हारी साड़ी उड़ा ले जाना

मैंने देखा नहीं मुझे दीखा। ज़रूर मेरा भ्रम था कि तुम मुझे बुला रही हो। मेरे अन्दर के आशंकाग्रस्त 'मैं' ने ही मुझसे यह कहा होगा। अन्दर की आशंका और भय सामने के आदमी में मनोवांछित भाव देख लेते हैं पर जो भी हो मैं अपनी नाव छोड़कर तुम्हारी तरफ बढ़ चला और चलते हुए मुझे पता चला कि वह छोटा-सा दीखता धरती का टुकड़ा मीलोंमील लम्बा है मैं चल रहा हूं तुम दीख रही हो सूरज डूब रहा है अंधेरा उग रहा है फिर अंधेरा डूब रहा है तुम एक ही मुद्रा में खड़ी हो बस, कभी तुम्हारा रंग सुनहरा श्वेत हो जाता है तो कभी पारे जैसा, कृष्ण श्वेत दिन और रात का तुम पर इतना ही असर पड़ता है हवा तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकती उड़ते बाल तुम्हारे सिल्हूट को एक गरिमा देते हैं तुम्हारे असाधारण बड़े-बड़े मृगनयन नीचे फैले पानी के वृहद विस्तार को छोटा कर देते हैं पलकों में बन्द बड़े-बड़े हारे गत को दिन तुम्हारा यह ज्वलन्त रूप तुम्हें स्त्री नहीं रहने देता स्त्री का अमूर्त बना देता है और

मैं मीलोंमील भागता हांफता पसीने में लथपथ तुम तक पहुंच गया हूं

मैं तुम्हें छू कर, तुम्हें महसूस करना चाहता हूं

और फिर वह भयानक खेल शुरू हो गया है स्वप्न दुःस्वप्न में बदल गया है

पहुचकर पाया है, मैं तुम्हे छू नही सकता। एक ऊचे चौकोर पत्थर पर तुम खडी हो और मेरी तरफ देख रही हो

मैंने जोर से चीख कर कहा, 'मैं तुम्हे छूना चाहता हू।"

तुमने धीरे से कहा है, "तो छू लो।"

"नीचे उतरो।"

तुम हल्के से मुस्करा दी हो।

मैंने फिर ऊची आवाज म कहा है, "नीचे नही उतरोगी ?"

हवा बहुत तेज चल रही है। इसीलिए मै जोर से बोल रहा हू कि मेरी आवाज तुम तक पहुच जाए। पर मैंने सुना है तुम धीमे-धीमे बोल रही हो—और तेज हवा के बावजूद तुम्हारी आवाज मुझ तक पहुच रही है। तुम कह रही हो, "तुम कौन से देश के आदमी हो ? तुम्हे इतना भी मालूम नही कि नीचे से ऊपर चढना उतना मुश्किल नही होता, जितना ऊपर से नीचे उतरना मैं नीचे नही उतर सकती, मुझे छूना चाहते हो तो तुम्हें ही ऊपर चढना होगा "

मैंने अचानक कहा है, "पर मैं तो कभी किसी निश्चित दिशा मे चला नही "

वह खिलखिला कर हस दी है। वेदो के प्रथम अक्षर मे भी व्यापक हसी। हसते हसते उसने कहा है 'तुम नाव मे यहा तक एक निश्चित दिशा मे आए हो।"

और मैंने खुद को उस खेल म होम दिया है

पत्थर पर पत्थर चिनकर मैं मच बनाता हू उस पर खडा होता हू उसे छूने की कोशिश मे हाथ ऊचा उठाता हू और हर बार मेरा हाथ नीचा रह जाता है तुम्हारा मच न जाने किस काल प्रेरणा से ऊचा उठ जाता है मैं फिर नीचे उतरता हू और पत्थर चुनता हू अपने मच पर चिनता हू और चढकर तुम्हारी तरफ हाथ फैलाता हू पर फिर तुम्हारे और मेरे बीच की दूरी मेरा हाथ झटक देती है।

हजारो साल बीत गए है यह खेल चलते हुए

दिन उगता है और रात को छूकर खुशी खुशी डूब जाता है। रात गहराती है और दिन में खुद को समर्पित कर अनस्तित्व में बदल जाती है। पर मेरे और तुम्हारे बीच की दूरी जैसे शाश्वत हो गई है सिसीफस की तरह अभिशप्त मैं पसीने से लथपथ, मुंह से खून उगलता हुआ, पत्थर ढो रहा हूं। मैं अब इस खेल का इतना आदी हो चुका हूं कि इसे छोड़ भी नहीं सकता। यह खेल ही मेरे अस्तित्व का प्रमाण है। शायद आधार भी यही है। और शायद अब तो अंत भी यही है। जिस दिन पत्थर ढोना बन्द कर दूंगा उस दिन पत्थर की तरह ढह जाऊंगा और वह मुझे मंजूर नहीं है। मैं जानता हूं मेरी नाव पानी में बह गई है। धरती का यह टुकड़ा दिन पर दिन छोटा होता जा रहा है किसी भी दिन यह गायब हो जाएगा पर उस दिन से पहले खेल खत्म नहीं कर सकता मैं लाचार हूं अब यह मेरी नियति है इस खेल का अपना एक तर्क है वह तर्क मेरा बंधन है और यह बंधन मुझे प्रिय है निराशा से अधिक अपने होने का बोध और कौन सा भाव करा सकता है मैं खुश हूं कि इस खेल से प्राप्त निरर्थकता का बोध ही आज मेरे होने का बोध है और उसके अपने से दूर होने का बोध भी

कभी कभी सोचता हूं कहीं यह मेरा भ्रम ही तो नहीं जिसके कारण वह मुझे अपने से ऊंची दिखाई देती है दूर दीखती है

जो भी हो ऊंची दीखनी तो बन्द हो चाहे मंच बराबरी तक पहुंचे या दृष्टि की हीनता घुले तब तक तो इस नियति के साथ जूझना ही है तब तक तो इस नियति को प्रिय मानना ही है अपने अस्तित्व के पत्थरों को किसी सीमा तक मूंद रखना ही है पत्थर पर पत्थर चिनना ही है

अब तुम्हीं बताओ यह स्वप्न है या दुःस्वप्न ?

पर दोनों में फर्क क्या होता है

होता है। तलाश की शुरुआत के दिनों में स्वप्न दीखते हैं और धीरे धीरे हर स्वप्न दुःस्वप्न में बदल जाता है

तो ?

जबतक हर स्वप्न दुःस्वप्न में न बदल जाय, आदमी जिंदा

रहता है।

वह बीच-बीच मे पूछती है, "तुम थके तो नही?"

मैं चुपचाप अपने आप म डूबा नियति भेलता रहता हू।

वह कहती है, "बस, अब ब द करो।"

मेरे हाथ तेज हो जात हैं।

आखिर वह कहती है, "बहुत ऊची हो गई हू। मुझे डर लगन लगा है। देखो, चारा तरफ आकाश ही आकाश ह।'

मैं मन ही मन कहता हू 'हजारो साल स घूमती कहानी को पल भर म कसे रोक द् और अब तो हाथ पैर मशीन के पुरजा की तरह घूमने लग हैं। उ ह रोकना मेरे बस की बात नही है। अब तो यह प्रक्रिया मेरे टूटने के साथ ही टूटेगी।'

मैं धीरे धीर मर रहा हू हाथ पर शिथिल हा गए है उसका सौ दय अब मौत के सौ दय मे लीन हो गया ह पर मच ऊपर उठ रहा है

मैं उस रेखा तक पहुचन के लिए रेंग रहा हू जहा अस्तित्व और अनस्तित्व का भेद मिट जाता है

और सुनो, आखिरी बात। प्रेम दूसरे की हत्या करने को कहते है फक सिफ इतना ही ह कि प्रेम म आदमी सिफ उसे मारता है, जिसमें वह अपन अस्तित्व की परछाई साफ साफ दखता है। जिसकी आवाज को अपनी आवाज मानता ह और जिसकी ऊचाई को अपनी नीचाई का पूरक मानता ह।

मैंने तुम्ह बताया था न रोशनी नही मरती किसी न किसी ऊचाई पर हमशा जि दा रहती है

गति-सीमा

नही, यह सपना नही है, सच है। जो मैं देख रहा हू वह सच है।

वह मेरे घर म है। मेरे पलग पर मेरी चादर गले तक ओढे शात भाव से लेटी है। या शायद सो रही है। पलकें बद हैं। चेहरा, युवा-बाल चेहरा, सपनो की छाया मे तिरमिरा रहा है। बाल चेहरे के दानो तरफ चेहरे से अनासक्त बाल अपना खेल खेल रहे हैं। अनासक्त होकर ही आसक्ति को रग दिया जा सकता है।

मैं पलग के पास खडा हू। उसे देख रहा हू।

इन पलको के नीचे क्या है ?

पुतलिया। पारदर्शी पुतलिया।

पुतलियो म क्या है ?

क्या मालूम।

मेरा मन किया है उन रेशमी पलको को छू कर देखू। उगलियो की पोरो से। पर मेरी खुरदरी उगलिया कही खरोंच न डाल दें।

तो ?

होठो से ?

नही। मेरे होठो की काली पपडिया पलको के मोतिया रग को मला कर देंगी। मैं सिफ इन पलको को नजरो से छू सकता हू। इस तरह शायद इनके नीचे का कुछ दीख जाय। मैं क्या चाहता हू कि इन पलको के

नीचे का कुछ मुझे दीखे। शायद मैं वहां खुद को ढूंढना चाहता हूं। मुझे वहम है कि मैं भी वही कहीं हूं पूछूंगा। आज जरूर पूछूंगा। जागन दो।

वह अभी भी सो रही है।

मैं कमरे से निकलकर बाहर बैठ गया हूं। सामने डूबते सूरज को देख रहा हूं। सूरज डूबने से पहले आसमान मे इतने रंग क्यो छितराता है? सूरज दरअसल पुतली है। पुतली पलको मे बंद होने से पहले कभी लाल हो जाती है। कुछ देर में धरती और आकाश की पलकें पुतली को बन्द कर लेंगी। बाहर समूचे दीखते संसार में अंधेरा छा जायगा। सूरज मे क्या है कोई नही जानता। उसकी पुतलियों में क्या है कोई नही जानता जागने दो उसे, पूछूंगा उसी से

वह बतायेगी ?

हां, बतायेगी तो नही बस, हंस देगी उसकी पुतलियां की ज्योत्स्ना मुझ मे और पुतलियों मे और भी दुराव दूरी पदा कर देगी

फिर भी पूछूंगा आज जिद करके पूछूंगा

अभी तक सो रही है। पता नही, कब तक सोयेगी

सूरज डूब गया। पुतली ने जितने रंग बिखराये थे, अंधेरे मे गर्क हो गये। मैं अभी बाहर ही बैठा हूं वह मेरे कमरे मे, मेरे पलंग पर, मेरी चादर कंधों तक ओढ़े अभी भी सोई है पता नही कब जागेगी जागेगी तभी कमरे की बत्ती जलाऊंगा रोशनी की किरणें बंद रेशमी पलकों पर चुभेंगी। कच्ची नींद जाग जायगी मन खराब हो जायेगा कच्ची नींद खुल जाये तो मन पर धूल ही धूल छा जाती है मुझे मालूम है, उसे धूल से धुरधुरी आती है जाग जाने दो, तभी बत्ती जलाऊंगा

मन हो रहा है कि बत्ती की रोशनी मे उसका चेहरा देखूं सपनों से लिसा उसका चेहरा चिकना सफेद गुलाब नहीं, गुलाब नही रात की रानी का छोटा-सा मोतिया रंग का फूल हां, उसका चेहरा निस्वतन बहुत छोटा है बच्चे की तरह छोटा, सरल और छलपूर्ण

बच्चो और स्त्रियो के चेहरे पर तिरमिराता छल उन चेहरो को गध-पूर्ण बनाता है

कितनी बातें इकट्ठी हो गई हैं, करने के लिए जागे ता सही तभी ता कुछ हा सकता है।

रात गहरा गई। ग्यारह बज गये। हा सकता है बारह बज गये हा। कितना बक्त हा गया, बाहर ही ता बठा हू। अपने कमरे मे वह अभी जागी ही नहा। मैं भी अ दर नहीं गया। खटपट हो और वह जाग जाय। पडासी अभी अभी रात की ड्यूटी स आया है। पूछ रहा था—बाहर क्या बठे हा। मैं चुप रहा। क्या कहता। कोई सुबह स रात के बारह बज तक इस तरह लगातार सोता है? जगा दू? नही, सोने दो। मुझे नींद आ नहीं रही बठे-बठे ही झपकी ले लूगा। पता नही

एक बार झाककर देख तो लू। शायद आखें खोले पडी हो हा, दख लेन म क्या हज है। एक सैकण्ड के लिए बत्ती जलाकर दख लूग। जगी हुई ता ठीक है। साइ हुई तो फिर बाहर आकर बैठ जाऊगा। फिर सुबह दखूगा।

मैंने हल्के स किवाड धकियाये हैं। धीरे स बत्ती का स्विच दबाया ह। रोशनी हुई ह वह पलग पर उतने ही सपाट ढग से लेटी है। एक दम वही गरन तक चादर ढकी है। पलकें मुदी हैं। पलको का और चहरे का रग ट्यूब की रोशनी म हल्का नीला लग रहा है। पर इसस सुन्दरता बढी है कम नहीं हुई। मोतिया रग पर हल्के, आसमानी रग का लेप क्या मनाहारी मेल है मोतिया रग में हर की झलक ज्यादा होती है समानान्तर पानी जितने नीले रग की चबक दे रहा है अरे। य बाल किसने उडाय? बस आग हाथ बढाकर बालो न चेहरे का ढक लिया है कहीं नजर न लग जाय। इसीलिए न। बाल तक मालकिन के नखरे का जानते हैं। मत देखने दो मुझे चेहरा मन भर कर बत्ती बुझाए दता हू बाहर बठ जाता हू। यहा सो जाता हू। पर जानता हू रात का नींद खुल गई तो क्या। बस समझो कि खैर नही

मैंने बत्ती बुझा दी है। दरवाजा हल्का-सा ढुकाया है। बाहर आकर

अपनी कुर्सी पर बैठ गया हू। चारो तरफ अधेरा है। कहीं कोई पानी नही है। आसमान साफ है। गर्मियो के मौसम में साफ आसमान। पर सितारा एक नही दीख रहा। जाने क्यो। दिन भर चलती गर्म हवा ठडी पड चुकी है। पूरी बस्ती सोई पडी है। गहरी नीद मे। जैसे वह सो रही है। यह सोता आदमी मरा हुआ क्यो लगता है? जैसे सिर्फ शरीर हो और आदमी कहीं घूमने चला गया हो। पर कभी अजीब बात है आदमी कहीं चला जाय, शरीर उसी तरह खूबसूरत लगता है। आदमी नहीं औरत। अरे बाबा, हा, वही तो कह रहा हू। खूबसूरत तो होती ही औरत है आदमी तो बस, कबाड होता है

मुझे अपने इस मजाक पर हसी आई है। मन ही मन।

पर साथ ही पता नही किस बात से डर कर मैं चौंक उठा हू। कुर्सी से उठकर खडा हो गया हू। मैंने कमरे के दरवाजे की तरफ देखा है बद है। अन्दर कोई आहट हुई थी? नही तो। फिर मैं डरा क्या? क्या, आहट ही से डरता है आदमी सन्नाटे से नही डरता। हा, यह बात तो है वैसे सन्नाटा शोर से भी भयावह होता है पर यह सन्नाटा तोड़ूं कैसे अन्दर वह सो रही है। बाहर कही कोई नही। मैं अकेला हू। चारो तरफ ईंट-चूने पत्थर के बने मकान ठोस अधेरे मे जडे खडे है। नीद ने तरल मानवीयता को पत्थरो मे चिन दिया है कितना डर लग रहा है आस-पास कोइ पेड भी तो नही भाग कर उसी के सहारे खडा हो जाता पेड कभी आदमियो की तरह नही सोते सन्नाटे मे भी हिलते जरूर रहते है

उसे जगाऊ?

नही, सुबह जगाऊगा तब तक

आसमान मे एक भी सितारा नही है

डर भूरा डर, किस कदर ऊपर से झर रहा है

ओह नही यह सन्नाटा सहन नही होता नही, नही, नही, आवाज चाहिये उसकी आवाज चाहिये

मैंने हडबडाकर किवाड खोल दिए है। बत्ती जला दी है उसके सिर पर खडी खिडकी खोल दी है गले तक फली चादर को थोडा पीछे

हटा दिया है चेहरे पर आ बढ़े बाल पोंछ दिए हैं पर पर रेशमी पलकों में एक भी सिलवट नहीं पड़ी है वह शांत निश्शब्द सी रही है

वह सो रही है कहीं कोई आवाज़ नहीं है क्योंकि वह सो रही है शायद सब जानते हैं वह सो रही है सितारे भी पेड पौधे भी और अंधेरा भी

और मैं भी

मैं उसके पलग की बाही पर दोनो हथेलिया जमाये झुका खडा हू। उसका चेहरा देख रहा हू चेहरा सो रहा है। वही, बडी-बडी पलको पर सपनो की चिकनाहट। चिकनाहट म वही मातिया और हल्के-नीले का घोल। पूरे चेहरे पर वही किशोर लवणता मैंने और भुककर चेहरा देखा है वह सो रही है जगने का कोइ चिह्न नहीं है

वह तो आख मूदी भी हो किसी का पास सूघते ही जाग जाया करती है

बहुत गहरे सपनो म खोई है या शायद सपनो की भीड न पुतलिया, पलको को जड कर दिया है मैंने हल्के से अपने होठो को उसकी पलको, माथे और होठो पर छुआया है, और सीधा खडा हो गया हू पलग के पास स पीछे हट गया हू चारो तरफ देखा है बत्ती के प्रकाश ने सारी बस्ती से मेरे कमरे को अलग काट लिया है रात का तीसरा पहर चल रहा है कमरे में हर चीज़ उनींदी है मेरी आखें भी भारी हो रही हैं

बाहर कौवा काव काव कर रहा है वह, नहीं, उसका शरीर सो रहा है शरीर सो रहा है वह कही गई है

अब तो कमरे म ही सोया जा सकता है

मैंने अपने सामान म स दरी निकाली है पलग से बचे फर्श पर उसे बिछाया है और लेट गया हू बत्ती खुली छोड दी है

लटते ही मुझे नींद आ गई है

नींद में न सन्नाटा होता है न शोर होता है न डर लगता है परिचित दुनिया स आदमी दूर चला जाता है इसीलिए शायद डर नहीं

लगता
उसका शरीर सो रहा है
मैं सो रहा हू
वह पलग पर, मैं जमीन पर
समय अपनी सहज गति से घूम रहा है
सुबह के बाद शाम और शाम के बाद सुबह आ-जा रहे हैं

पृथ्वी पहले अपनी धुरी पर और साथ-साथ सूरज के चारो तरफ घूम रही ह सूरज सपनो से लबालब एक पुतली है कुछ पता नही चलता उसमे क्या-क्या है

मैं उसकी पुतली के चारो तरफ घूमता रहा हू कुछ पता नही चलता उसमे क्या-क्या ह।

पर मैं शान्त चुप सोया हू अपनी धुरी पर घूमना बन्द कर दिया है धुरी टूट जो गई है उसकी पुतली। चारो तरफ घूमना मेरी अपनी गति नही

सोये-सोये मुझे लगा है, दिन निकल आया है। कोई मेरा दरवाज़ा खट-खटा रहा ह और मैं सोये-सोये ही होठो पर उगली रखकर, बन्द किवाडो के इधर से ही कह रहा हू, "चुप, शोर मत करो। वह सो रही ह। और मैं सोने की तैयारी मे हू जाओ, फिर कभी आना।"

कहकर मुझे लगा है अन्दर के सब भय खत्म हो गये हैं

खरगोश

आपको एक कहानी सुनाता हू ।

एक आदमी था। था नही, है। है नही, होता। हा, होते-होते एक बात हो गई।

कहानी से पहले वह बात सुनाता हू।

शाम का वक्त । सूरज पानी पर फिसल रहा था। सुनहली रेत काली पडती जा रही थी। भयभीत रेत के दाने एक दूसरे से चिपके पडे थे। एक तरफ से समुद्र का पानी और दूसरी तरफ से ऊचे-ऊचे ताड के पेडो की छाया रेत के दानो को पुचकार रही थी। पर डूबते सूरज की कालिख पूरे माहौल पर हावी थी। सद हवा ने और भी सद करवट ले ली थी। जब वह बात हुई, मुझे याद है सर्दी की एक शाम थी। सर्दी की शाम बहुत सुहानी होती है। *सर्दी की शाम बहुत भयावनी होती है।*

उस बात से भी पहले मैं उसका परिचय दे दू।

वसे उसका परिचय देने को है भी क्या ?

फिर भी। वह आदमी था। था नही, है। है नही, होना चाहता था। पर वह बात

बम्बई शहर। समुद्र के किनारे ताड के ऊचे-ऊचे पेडो का एक जगल। जगल के किनारे खडे पेडो के नीचे उसका बिस्तरा। टुकडा-टुकडा गूदड का चीथडा, कपडे से ढका हुआ। पास मे पत्तों का जलता अलाव। बिस्तरे के

ऊपर बोरियो का सिला एक लिहाफ। लिहाफ मे एक कोने पर एक रेशमी कपडा सिला हुआ। दिन मे सारा बिस्तरा बोरी मे और बोरी पेड पर। शाम ढलने से पहले-पहले बिस्तरा पसर जाता, और बिस्तरे पर वह वह, जो एक आदमी था था नही है है नही होता पर

बस, यही उसके अदर और बाहर का परिचय था। हा, परिचय मे 'था' ठीक है क्योकि जब से वह बात हुई है, उसका यह मामूली-सा परिचय भी उसके हाथ से फिसल कर गिर गया है। रेत-ने उसे लील लिया है। अधेरे ने मौसम के हल्के से उन्नाबीपन को मिटा दिया है उसने लिहाफ मुह तक ढक लिया है पर कुछ दिना पहले तक

कुछ दिन पहले

आपको एक बात बताऊ। जगल चाहे जितना घना हो, उसमे धूप के खरगोश जरूर होते हैं। उछल उछल कर भागते, छुपते-छुपते सामने आते वे सलौने तो लगते ही हैं दीखती दुनिया एक छल है, यह अहसास भी कराते हैं। समुद्र के पानी मे नमक होता है। खरगोश का रग भी नमक जसा होता है। समुद्र की लहरें, छोटी-छोटी, रेतीले किनारे की तरफ भागती हैं। और औरत किसी किसी औरत का सिर खरगोश के सिर जसा हाता है और उसका शरीर पर वह छोडो

तो हुआ यू कि उस शाम उसने देखा कि एक सचमुच का खरगोश उसके बिस्तरे के एक किनारे खडा है और टुकर-टुकर उसकी तरफ देख रहा है।

वह लेटा था। उठकर बैठ गया। उसने उस खरगोश की तरफ ध्यान से देखा—सफेद चाद जैसा रग। छोटी छोटी टागें। छोटा-सा सिर। दो आखें। भूरे बडे दायरो मे से चमकीले सीपिया दायरे। देखने के अदाज मे सहज, पारदर्शी कौतूहल। पता नही क्यो, वह उसे उठता हुआ देखकर न डरा, न भागा उसने हाथ बढाया और खरगोश को सहलाने लगा।

समुद्र के किनारे उस दिन बहुत चहल पहल थी। इतवार की शाम। हरे, नीले, भूरे, उन्नाबी रगो के कपडो मे से रग-बिरगे कुलबुलाते शरीर।

उबलते पानी की तरह फुदफुदाते हुए। ऊपर से डूबते सूरज की किरणो का करतब। हर शरीर का रग बदलता हुआ। शरीर का रग बदलता है तो अच्छा लगता है। शरीर का बदलता रग अदर छाए मोह को तोडता है साफ करता है।

तो खरगोश बैठा रहा। हसता-खेलता रहा। वह उसे सहलाता रहा। कभी हाथो से तो कभी नजरो से। वक्त बीतता रहा और शाम हो गई।

अचानक भूरे दीखते ससार का रग बदल गया। निर्दोष खरगोश डर गया। उसकी आखो का सीपिया दायरा बहुत रोशन हो गया। उसके बिना हड्डिया वाले शरीर के बाल खडे हो गए। वह कहा जाए वह भूल गया वह कहा से आया था कोई उसे इतनी देर से सहला जो रहा था वह समझ गया। उसके अदर गुदगुदी-सी होने लगी। उसने खरगोश को उठाया और अपने बिस्तरे मे दुबका लिया सारी रात वह खरगोश को हवाओ से बचाता रहा

खरगोश उसके साथ ही रहने लगा।

पर वह बात अभी दूर है। उससे पहले कई और बातें सुनानी पडेंगी। उस आदमी के बारे म, जो कभी था और अब नही है। जो कुछ और था, अब कुछ और है और कुछ देर बाद

बम्बई शहर। मेरीन ड्राइव। समुद्र को बाहो मे घेरे पडा एक लबी सडक। सामने मलाबार हिल। वही शाम का वक्त। लहरो के ठहाके। किनारे बैठे लोगो के कहकहे फुसफुसाहटें। भागती कारें। ठहरती औरतें। गहमा-गहमी। दिन की 'मोनोटनी' को लगते झटके। टूटेगी रात को। रात दिन की और मौन जिंदगी की मोनोटनी' तोडती है सूरज धीरे धीरे डूब रहा है बहुत धीरे धीरे

वह आदमी उस छहमजिले मकान से निकला है। लबा कद। स्वस्थ शरीर। शानदार कपडे गोरा रग। चमकदार खाल। पीछे पीछे वह, आगे-आगे कुत्ता।

आगे आगे कुत्ता पीछे-पीछे आदमी चारों तरफ आदमी की बनाई

खूबसूरती खडी हुई। प्राकृतिक खूबसूरती चलती फिरती।

आदमी ने कुत्ते से कहा, "टाइगर, धीरे चलो।"

पर हुआ यह कि कुत्ते के दवाब पर आदमी तेज-तेज चलता रहा।

इमारतो की लबी कतार। लहरो का ठठाकर टैरेस से टकराना, किनारे के पत्थरो पर सिर धुनना, कूदकर सडक पर आ जाना। मलाबार हिल का ऊपर से झाक कर देखना और मुस्कराना। विशाल समुद्र की छाती मे नरीमन प्वाइट का धसे पडे रहना कुत्ते का आदमी को घसीटना सब बहुत मनोरजक है। कितन लोग है कुछ अकेले, कुछ दुकेले। कोई किसी की तरफ देखता नही। सब अपने अपने मे दुखी है या सुखी। कुत्ता उसे घसीट रहा है। वह हस रहा है। वह आदमी उस औरत की बाह से ऐसे थामे है, जसे अभी ले जाकर थान मे बद कर देगा। वह हस रही है। एक आदती इमारत की पाचवी मजिल के छज्जे पर खडा सुनहरे को काला होता देख रहा है। वह खुश है उसके पीछे स्टीरियो से गीत फूट-कर फैल रहा है—दिन रात बदलते हैं, हालात बदलते हैं

कुत्ता आदमी को घसीटे लिए जा रहा है।

वक्त ने गिरगिट की तरह रग बदल दिया है

तो अब खरगोश उस आदमी के साथ रहने लगा।

अब मैं उस बात के नजदीक लुढक आया हू। पर उससे पहले एक और बात। खरगोश उस आदमी के पास रहने लगा है और उस आदमी को अब रात को सपने दीखने लगे है। पहले वह गहरी नीद सोता था। अब जागता-जागता सोता है। कभी-कभी दिन मे भी सपना देख लेता है। सपने का क्या है। जब दीखता है तो शरीर हरा हो जाता हू। सब बीमा-रिया दूर हो जाती हैं। नही दीखता तो शरीर मे कीडा लग जाता है, शरीर सुन हो जाता है

खरगोश बहुत सुदर, बहुत कोमल जानवर होता है बडे लोग इसकी खाल के हैड-बैग बनवाते हैं औरतो को भी ये लोग हड-बैग की तरह थाम कर चलते हैं।

खरगोश की बात छोडें। उस आदमी की बात करें। वह आदमी जो

था, अब नहीं है

उस आदमी ने तीस साल इस दुनिया मे काटे।

उस आदमी का कोई परिचित नही ह।

वह सिफ आदमी है।

सुबह को पेड के नीचे से निकलता ह। बिस्तरा पेड के ऊपर टागता ह। स्टेशन पहुचता ह। लोकल मे चढकर शहर के बीचोबीच पहुचता ह। एक चौराहे पर एक दूकान ह। वहा पहुचता ह, उसके बाद दूकान खुलती है। दूकान के सामने उस जसे ही और लोग इकट्ठे होते हैं। ये सब रगो की मदद से मकानो की मली दीवारो को तरोताज़ा करते हैं। उनकी रगत बदलते हैं। दूकान जो खोलता है, इन सबका ठेकेदार कहलाता ह। रोज शाम को अलग अलग आदमी को उसकी मेहनत का चुकता देता ह। सब वापिस। फिर

उसे रगो की अच्छी समझ हैं

आदमी का चेहरा देख कर समझ जाता ह कि इसे अपने मकान की दीवार पर कौन-सा रग पसद आएगा।

वह आदमी अपनी कोच पर बठा है। ऐसे जसे पहले सिंहासन पर राजा लोग बठते थे। मुह मे पाइप। परो मे टाइगर। काच एक बहुत बडे कमरे मे अपन और साथियो के साथ बिछा ह। कमरे का दरवाजा बाहर समुद्र की तरफ खुलता ह। दरवाजो पर भारी शनील के उन्नाबी परदे लहरा रहे हैं। हल्की से हल्की आवाज़ पर टाइगर चौंक उठता ह। कमरे मे सगीत, उबाऊ सीमा तक भरा पडा है। सामने की दीवार पर एक शानदार पेंटिंग लटकी है। छोटी मेज पर रग बिरगी मगज़ीनें सजी हैं। बराबर की ऊची अलमारी मे मोटी मोटी किताबें करीने से लगी हैं। उस आदमी के सामने एक दूसरी कोच पर एक बेहद सुन्दर स्त्री शालीन मान से बठी एक मगज़ीन पढ रही है। उसने मेहदी रग की रेशमी साडी और सिलकन ब्लाउज पहन रखा है। शरीर भरपूर है।

वह आदमी बठा एक मोटी-सी किताब पढ रहा है।

दोनो पढने मे डूबे हुए हैं।

सिफ कुत्ता रह रह कर चौंक उठता है
वह पढ़ना नही जानता।
और चाहता है, उनका पढना 'डिस्टब' न हो।

बाहर अधेरा ह।

मैंने आपको बताया था न, खरगोश उस आदमी के पास रहने लगा है। समुद्र के किनारे घूमने आने वाले लोग उसका मजाक उडाते हैं—पागल भिखारी ने खरगोश पाल रखा है। खुद के पास खाने को टुकडा नही है, खरगोश पालेगा। इसके पास आने से पहले इस खरगोश का रग कितना दूधिया सफेद था, कैसा हट्टा कट्टा था, और अब? घुन लगने लगा है।

कोई-कोई उससे कहता है, "यह खरगोश हमे दे दो।"

वह चुप रहता है।

"पसे ले लो।"

वह चुप ही रहता है।

"किसी दिन कोई उठा ले जाएगा।"

वह चौंकता है। इधर-उधर देखता है। खरगोश को उठाकर अपनी छाती से चिपटा लेता है। पर चुप रहता है।

और अब वह अपने काम पर भी खरगोश को साथ ले जाता ह। सारी रात उसे टटोल टटोल कर महसूस करता रहता है। वह उससे प्यार करता है। खरगोश उसके अदर फूल खिलाता ह। खरगोश खुद उसके लिए एक खूबसूरत फूल है। उसमे कोमलता है, गघ है, मानवीयता है।

वह बात फिर छूट गई। दरअसल उससे पहले एक और कहानी सुनाना जरूरी हो गया ह।

कहानी नही, वह भी एक सच्ची घटना ह। मैंने कही पढी थी।

कहानी यो है

सात दोस्त शिकार को गए, एक बीहड जगल मे। जगल मे शेर भी थे और हिरन भी। सातो ने मिलकर एक हिरन मारा। मरे हुए हिरन को

जब वे सभाल कर एक जगह रख रहे थे, तो एक शेर ने घात लगाकर सात मे से एक को दबोच लिया। मुह मे उस आदमी को दबाये वह जगल मे भाग गया। बाकी के छह आदमी हक्का-बक्का पर देर तक चकित रहने का मौका नही था। हिरन उठाया और कप मे आ गए। हिरन को पटका और कैंप के सामन बठ गए। उदास, बुझे-बुझे, बहुत देर बैठे रहे।

तब उनमे से एक उठा और कप मे घुस गया। सुबह का कुछ भुना गोश्त रखा था, उसे उठा लाया। उनको भूख लगी थी। सबन वह गोश्त मिल-जुलकर खाया। और छह के छह जन पेट भरते ही अपने सातवें साथी को याद करके रोने लगे।

पर अपनी बात पूरी करने के लिए मुझे एक कहानी और सुनानी पड़ेगी।

वह कहानी यो है—कॉलरिज के बूढे मल्लाह की कहानी यो है

बूढा मल्लाह अपने दो सौ साथियो के साथ यात्रा के लिए निकला। किनारा छोडते ही उसने देखा कि 'एल्बट्रास' नाम की एक चिडिया उसके जहाज के ऊपर मडरा रही है। यह चिडिया अच्छे शगुन वाली चिडिया मानी जाती है। जहाज पर इसलिए आई थी कि उसका कुछ अनिष्ट न हो। पर पता नही बूढे मल्लाह को क्या हुआ कि उसने अपनी गुलेल उठाई और चिडिया पर दाग दी।

जहाज पर शाप टूट पडा। चिडिया की लाश मल्लाह के गले मे लटक गई। उसके दो सौ साथी मर गए। उनकी चार सौ पथरीली आखें उसे घूरती रह गइ। जहाज रुक गया। समुद्र का पानी लावे की तरह उबलने लगा। मछलिया मर गईं। चारो तरफ सडाध फैल गई।

बूढे मल्लाह को जीते जी नरक नसीब हुआ।

और आप जानते हैं यह शाप कैसे टूटा।

मैं बताता हू। मल्लाह को एक साप दीखा। उसकी खाल बहुत सुन्दर थी। मल्लाह ने उस साप की खाल की सुन्दरता की प्रशसा की और शाप टूट गया।

खरगोश की खाल भी बहुत सुंदर होती है। उस आदमी के मन पर छाई धुध भी छट रही थी। उसके अदर एक चिराग-सा रोशन हो रहा था कि वह बात घट गई। वह बात, जिसे बताने से मैं अब तक कतराता रहा हू।

वह आदमी अब भी कोच पर बैठा किताब पढ रहा है। पाइप के लबे लबे कश खीच रहा है। धुआ उड रहा है। कमरे मे सगीत है। दीवार पर आज नई पेंटिंग है। पहले से भी शानदार। पर्दे हिल रहे है। हवा कमरे में आ-जा रही है। छोटी मेज पर रखी रग बिरगी मगजीनो के पन्ने खुद-ब-खुद फडफडा रहे हैं। टाइगर शात-मुस्त, पर चौकन्ना बैठा है।

वही महिला अभी कमरे मे घुसी है।

महिला को देखते ही उस आदमी ने मुह से पाइप निकाल दिया है। किताब उलट कर एक तरफ रख दी है, और जोर से बोला है, "अरे, मालूम है आज टाइगर ने क्या किया ?"

महिला ने आदमी की तरफ देखा है। महिला वाकई बहुत सदर है।

आदमी ने बताया है—बताते-बताते हस रहा है।

'वह जो नीचे की मजिल मे कुछ मजदूर काम कर रह थे ना। उनमे से एक के पास एक खरगोश था। टाइगर उसे चट कर गया। तुम्हारी कसम दो निवालो मे। शेर ने तीसरा निवाला नही लगने दिया। कमाल कर दिया टाइगर ने। तुम होती तो देखती, क्या नजारा था।"

"फिर ?"

"फिर क्या ?"

"उस आदमी ने कुछ नही कहा ?"

"मैं तो दे रहा था उसे दस रुपए। उसने लिए ही नही। पागल था। कहता था—दे सको तो वही खरगोश दे दो। वरना "

कहकर उस आदमी ने किताब सीधी कर ली है।

और वह महिला मगजीन म कुछ ढूढ रही है। पर्दे हिल रहे हैं। सगीत और ठडी हवा कमरे मे हिल डोल रहे हैं।

बाहर अधेरा है।

चारो तरफ अधेरा है। बहुत तेज हवा चल रही है। पेड हिल रहे हैं। साय-साय की आवाज जगल को और भयावना बना रही है। ज्वार आया हुआ है।

धारियो से सिला लिहाफ सिर तक ओढे वह आदमी लेटा है। बराबर में आज के लिए रोटिया रखी हैं।

लहरो ने पहले उसके बदन को सहलाया है। फिर उसे उठाकर ले गई है। साथ मे रोटिया भी। शायद सफर मे भूख लगे।

और अब उस आदमी की कहानी सुनाने से क्या फ़ायदा, जो कभी था, अब नहीं है।

बहता शून्य और टेलीफोन बूथ

चमचमाता हुआ रेलवे-स्टेशन का प्लेटफाम। चमचमाती पोशाको मे फिसलते लोग। तरती आवाजें। गुदगुदी करती फुसफुसाहटें। कोई जा रहा है, कोई आ रहा है। एक बहुत बडी गोल घडी प्लेटफाम के सिर पर लटकी है।

उसने कहा था—प्लेटफाम से ही फान कर लेना। मैं लेन आ जाऊगी।

उसन चारो तरफ देखा। चहल पहल के बीच एक कोने मे टेलीफोन-बूथ खडा है। शीशे की दीवारो से घिरा। किवाड बन्द हो जाता है तो अदर की आवाज बाहर नही आती, बाहर की आवाजें बात करते आदमी को 'डिस्टब' नही करती। शीशे का किवाड लकडी के चौखट मे जडा है।

अन्दर कोई है।

वह शीशे मे से देख रहा है।

अन्दरवाला आदमी एकदम 'रिलैक्स्ड' खडा बातें कर रहा है। उसके चेहरे पर मिठास है। वह रह रहकर मुस्करा रहा है। मुस्कराता है तो बड प्यारे ढग से बालो को झटका देता है। खूबसूरत है। स्वस्थ लबा कद, गोरा रग। कपडे भी सलीके से पहन रखे है। कपडा का रग भी सुखद है।'

शायद वह अपनी प्रेमिका से बात कर रहा है।

या शायद किसी व्यापारी से। व्यापार के बारे मे, जिसमे उसे लाभ की आशा है।

या शायद वह किसी खूबसूरत यात्रा का प्रोग्राम बना रहा है।
उसे भी फोन करना है।
वह इन्तजार कर रही होगी— शायद। शायद नही।
वह मानता है उसे इन्तजार होगा।
झूठ बडा मीठा होता है।

उसने हाथ की घडी देखी। प्लेटफाम की घडी के लिए गदन उठानी पडती है। दस बजकर दस मिनट। बूथ मे खडा आदमी असफल है। उसके चेहरे पर से सौम्य भाव गायब हो चुका है। आक्रोश है वह हाथ फेंक-फेंक कर बातें कर रहा है जरूर ज़ोर-ज़ोर से बोल रहा होगा।

उसे हसी आ गई। कैसा विचित्र लग रहा है यह आदमी ! एक बेजान बेआवाज रोबाट की तरह जिस के पुर्जे हिल रहे हो किसी से लड रहा है। पर लडकर खुद को या दूसरे को लहूलुहान कर देगा, इस की कोई चिन्ता नही है।

उसे ज़ोर से हसी आई। सोचा, विज्ञान कितना मानवीय है। दूर खडे लड लो और सम्बन्ध ताड लो या फिर जोड लो

सम्बन्ध उसे और ज़ोर से हसी आई परिभाषा विचार को और सम्बन्ध व्यक्ति को छोटा करते हैं समझने मे मदद भी करते हैं हा करते तो हैं पर जडता भी लाते हैं इसी से एक दिन

यह आदमी बूथ मे से निकल ही नही रहा अरे यह इसके चेहरे को क्या हुआ लगता है अभी रो देगा क्या हुआ झगडे म लाचार हो गया होगा टेलीफोन पर आदमी वहुत लाचार हो जाता है सामने कोई हो तो लड भिड लो और ठण्डे हो जाओ

पर यह आदमी अब तो इसका मुह भी नही हिल रहा। कान से रिसीवर लगाए यह चुपचाप खडा है उधर से भी तो कोई नही बोल रहा शायद नही तो इसका चेहरा इतना जड न होता। रिसीवर किसी ने बिना बात खत्म किए रख दिया होगा कब तक खडा रहेगा यह इसी तरह पर टोकना नही चाहिए

चलकर पहले एक कप कॉफी पीने का फैसला किया उसने। सामने ही स्टाल है। खूब भीड है। सारी रात सफर किया है। बदन टूट गया है। कॉफी कुछ तसल्ली देगी। वह स्टाल की तरफ चल दिया है।

उसे लगा, अनगिनत आदमी उसे स्टाल तक जाने से रोक रहे हैं।

बडी घडी दस बजकर पन्द्रह मिनट बजा रही है। उसकी घडी मे सत्रह मिनट हुए हैं। किसी गाडी के आने की सूचना रिले हो रही है। एक गाडी जा रही है। उसने कॉफी देने को कह दिया है। वह आदमी अब भी ज्यो का त्यो रिसीवर कान से लगाए खडा है। यहा से भी दीख रहा है। बाहर कई और लोग आकर खडे हो गए हैं। बेचन हैं। बूथ का दरवाजा बद ह।

कॉफ़ी काउन्टर पर ठक से पटक दी गई हैं। वह बेआवाज आदमी को देख रहा ह। रिसीवर उसके हाथ से छूट कर लटक जाए तो कोई न कोई झटके से दरवाज़ा खोल दे। पर

आपकी कॉफी, बाबू साब !

कॉफी का एक लम्बा सिप लेकर वह मुस्कराया। दूसरी तरफ से कम्युनिकेशन टूट जाए तो इधर का आदमी जड हो जाता है। वह पडित जी क्या कहते हैं, जब कोई मरता है इसकी तो भाई इधर से बोलचाल टूट गई, राम से जुड गई, यह तो गया। तुम भी अपने अपने घर जाओ।

उसका मन किया वह खिलखिलाकर हस पडे। शायद उसके ठहाके से ही वह आदमी चौंककर रिसीवर छोड दे कोई दरवाज़ा खोल दे वह फोन कर सके।

उसने कॉफी का एक और लम्बा सिप लिया।

"रास्ता छोडिए, एक तरफ हट जाइये, रास्ता छोड दीजिए "

क्या है ?

एक स्ट्रेचर। उस पर खाकी ड्रेस में एक आदमी लेटा है। दो आदमी उसे ढो रहे हैं। नही, वह तो अभी खडा है रिसीवर हाथ मे चुपचाप उसे अभी आशा है, शायद कम्युनिकेशन फिर जुड जाए

क्या हुआ भाई ? ' किसी न किसी से पूछा है।

"बिजली से मर गया।"

मर गया ?"

'हां।

उसने काफी खतम की और बूथ के पास जाकर खड़ा हो गया।

रिसीवर अभी हाथ में से छूटा नहीं है।

चारों तरफ की चमक और चहल पहल बढ़ घट रही है।

बूथ के बाहर खड़े कई लोग तिलमिला रहे हैं।

उस आदमी ने ग्रे बुशर्ट और गहरे ब्राउन रंग की पैंट पहन रखी है।

'सुनो उस आदमी को क्या हो गया था ?'

किसी ने बात शुरू करनी चाही है।

किसी ने बात बढ़ाई है काम कर रहा था, किसी ने इनसुलेटर' हटा दिया। सर्किट पूरा हो गया। मिनट भर फड़फड़ाया। बंदर की तरह चिचियाया, फिर मर गया '

बात और आगे बढ़ी है ' ये इनसुलेटर काहे बनते हैं ?

अबरक के।'

हां, याद आया। और सारी दुनिया का सत्तर प्रतिशत अबरक भारत में होता है।"

'फिर भी यहां आदमी

" अबरक की कमी में मर जाता है।'

"अबरक की नहीं अक्ल की कमी में '

'किसी भी कमी में सही मर तो जाता है।"

हां, मर तो जाता ही है अरे। यह भी कहीं मर तो नहीं गया, हाथ में रिसीवर लिये लिये।'

सब खिलखिलाकर हंस पड़े हैं।

"दरवाज़ा खोलो।'

"हां खोलकर देखो।'

"जल्दी देखो।'

"दीख तो रहा है।"

"हां, दीख तो सब रहा है।"

"दरवाजा खुलते ही कहेगा—तुम्हें दीखता नहीं है।'

सब फिर खिलखिलाकर हंस पड़े हैं।

"   कितना वक्त हो गया ?"

"वह छोड़ो, प्रश्न है, कितना वक्त और है   '

"किसके पास ? हमारे या उसके ?"

बीतते वक्त का दबाव कुछ कम हुआ है। उसके बारे में बात जो हो रही है।

दस बजकर पच्चीस मिनट। उसकी घड़ी में। वह इंतजार कर रही होगी। क्या कर रही होगी ? पहले की औरतें पीढ़े पर बैठकर इंतजार करती थीं। अब काउच में धस कर इंतजार करती हैं   इंतजार में आदमी शून्य में चला जाता है, उसके अंदर का शून्य फैलकर उसे लील जाता है शून्य बहुत 'क्रिएटिव' होता है   पर शून्य में भ्रम का आभास होना चाहिए   सारी कला भ्रम में से पैदा होती है   यथार्थ भ्रम का स्थूल रूप है, आदर्श भ्रम का सूक्ष्म रूप   जो दीखा वह भी भ्रम   जो कल्पना की, वह भी भ्रम   इंतजार करता करता आदमी काम करने लगता है   दूसरा भ्रम पैदा करता है   यह आदमी   रूप बदलते-बदलते जड़ हो जाता है   अब अचानक जागेगा, बाहर निकलेगा और एक तरफ चला जाएगा भ्रम हवा में तैरकर निकल जाते हैं   जिंदा होने का भ्रम देने वाले लोग   सोता हुआ मुर्दा, स्ट्रैचर पर   लोग भ्रम में उसे

फिर हाथ उठा घड़ी दीखी। दस बजकर सत्ताईस।   नहीं, सीधे घर चलना चाहिए। दस बटा सत्ताईस नम्बर है न उसके मकान का। हां, यही है। ता   ? चलना चाहिए। भ्रम के इस दायरे को तोड़कर चकित रह जायेगी।

कितनी तेज धूप है। धूप में धूल के दाने सलोने बच्चों की तरह खेल रहे

हैं   थ्री-व्हीलर लुढक रहा ह, तेज चाल से । वह हिल रहा है । उसका बैग पास रखा ह । नीचे की धरती गति के भय से काप रही है । स्कूटर के पीछे हवा की गति से पदा हुए शून्य को पूरती भाग दौड कर रही हैं   वह इतजार कर रहा है   वह इतजार कर रही होगी   होगी   होगी   उसका होना   उसके होने की शर्त है   उसकी खाल का रग अबरकी ह   वह हट जाए   बीच में से   सर्किट, मौत का, पूरा हो जाएगा   फिर स्ट्रेचर कौन ढाएगा उसे

पर कौन है वह उसकी   कोई नही   फिर ?   फिर क्या ? कोई किसी का कुछ नही होता है   सम्बन्ध आदमी को छोटा करते है   धरती व आदमी का सम्बन्ध चाद से जुडा और वह उसे पुडिया मे बाधकर घर ले आया   नही तो, चाद ? विश्व भर के पुरुष को सौंदय की कल्पना से लबालब भर देने वाला चाद पुडिया मे बद न होता   कितने जमाने से कितनी खिदमत की हैं चाद ने आदमी की   और आदमी ने क्या मिट्टी खराब की है उसकी   उसकी मिट्टी का पोस्टमाटम   क्या मिलेगा आदमी को   उसके लिए भी लडेगा

नहीं, मैं उसे जानना नही चाहता   उससे कोई सम्बन्ध नहीं है, मेरा   वह मेरे लिए अबरकी चाद है   पूरे अधेरे को   मेरे भीतर के असुन्दर को कल्पना के साबुन से नहलाकर सुन्दर बनाती है   मैं   मैं वहा नही जाऊगा   वह, उसे, नही मुझे इतजार करने दो

"रोकना भाई।" उसने थके स्वर म कहा है।

'जी ? 'स्कूटर रुक गया है।

वापिस स्टेशन चलो।'

जी ? क्यो ?"

यार, जहा जा रहा था, वहा का पता भूल गया हू।"

'वाह बाबू जी । भले आदमी हो आप भी।'

स्टेशन की चहल पहल ज्यों की त्यो घट-बढ़ रही है। घडी साढे ग्यारह बजा रही है। टेलीफोन-बूथ खाली पडा है। स्ट्रेचर खाली होकर लौट

रहा है। खाकी पोशाक पहने कुछ लोग की-बोर्ड खोलकर बिजली ठीक कर रहे हैं। वह नया टिकट लेकर प्लेटफार्म पर आ खड़ा हुआ है। बूथ देखकर उसका मन मचल रहा है। देखें पर उसने तो वापिसी का टिकट ले लिया है। क्या कहेगा फोन पर क्या कहना है कह देगा, जा रहा है, हो सका तो फिर आएगा, वह बुरा न माने

तो कर ही लेते हैं फोन

कर लेते हैं

उसने बूथ मे घुस कर नम्बर मिलाया और बूथ के बाहर की दुनिया से मुह फेर लिया वह नही चाहता कोई उसके भाव पढे रिंग जा रही है शरीर मे उत्तेजना तेज हो गई है रिंग जा रही है रिंग बह रही है पर उसने रिसीवर कान से चिपका लिया है रिंग बह कर कही गिर रही है कोई भी शायद औटने के लिए उस किनारे पर नही है

मकान बन्द होगा बन्द मकान मे घटी की आवाज कसी लग रही होगी या शायद सो रही हो या शायद नहा रही हो या शायद किचन में या कम्युनिकेशन बनकर टूट जाना एक बात है और बन ही न पाना दूसरी बात यह स्थिति बहुत त्रासद है रिसीवर छोड दो बाहर कोई है तो नही पर शायद कुछ नही होता छोड दो रख दो बाहर जाओ

शीशे की दीवारो वाला बूथ फिर खाली हो गया है

प्लेटफाम पर बहुत शोर है

कोई गाडी आई है

वह गाडी की तरफ बढ चला है

वापिस जाएगा

वह इन्तजार करने के लिए घर पर नही थी

ठीक बारह बजे हैं। घडी फिर से गिनती गिनना शुरू करेगी।

एक औरत एक बच्चे को मारती हुई ले जा रही है।

वह हल्का-सा हस दिया है।

वह डिब्बे मे बैठ गया है।
गन्तव्य दिशा की ओर उसने पीठ कर ली है।
तेज़ होती गति की तरफ पीठ कर लेने से अन्दर का शून्य जड हो जाता है।
रिंग बज रही है, शून्य मे गूज रही है जड शून्य से टकरा रही है।
और शीशे की दीवारो वाला बूथ खाली पडा है।

द केव

तीन दिन से धूप नही निकली। कभी वारिश कभी कोहरा, कभी केवल बादल। सर्दियों के बादल। मीठे, उदास और मस्तिष्क के नीचे गुदगुदी करने वाले। कभी गरजते, कभी बरसते और कभी सिफ बहते। सब कुछ मीठा लग रहा है पर सब धूप के लिए तरस रहे हैं। वडा अजीव लगता है। मिठास से मन भर जाता है। मिठास के लिए मन ललकता है। मन बडा चचल होता है। हर समय बहता रहता है।

कब हुई सुबह, पता ही नही चला। घडी ने नौ बजा दिए है। अखबार किवाडो की सँध से झाक रहा है। दूधवाला चला गया होगा। घर के सब लोग बाहर गए हैं तीन दिन से। चाय बाजार मे ही पीनी पडेगी। चलेंगे। थोडी देर और सो लें। दफतर से उसने भी छुट्टी ली थी, घरवालो के साथ जाने के लिए। पर ऐन वक्त पर तबीयत खराब हो गई। घरवालो को अकेले ही जाना पडा। नही उसे अकेले घर मे रह जाना पडा। मजा आ गया। ऊपर से यह चौबीस घण्टो की काली-उदी चन्दौसी रात। दिन निकला ही नही। सुख ही सुख।

क्या है वह मेघदूत मे? बादलो के माध्यम से अपने प्रिय को सदेशा भेजने की बात। पागल था। जो यहा-वहा बरसता घूमे, उसको मन का भेद देना कहा की बुद्धिमानी है! मन की बात पत्थरो से कहनी चाहिए। किसी से कुछ कहेगे तो नही। वहती नदी से भी मन की बात कही जा

सकती है। ऊपर का पानी बहता रहेगा और बात तलहटी में जा कर बैठ जाएगी। सिक्का छोड़ो नदी की सतह पर, एकदम चीरता हुआ नीचे की ज़मीन पकड़ लेगा। ये सब—समुद्र, नदी, झील—सीधे कटोरे हैं। बादल तो कुछ उसमें ठहर नहीं सकता। और उसे दे दो मन का भेद। पागल था वह कवि। पुराना था न!

पर बादल अच्छे तो लगते हैं। अन्दर की समूची धरती नम-उपजाऊ हो जाती है। आँखें सिसकारियाँ भरने लगती हैं। शरीर का रोम रोम मुँह खोल देता है पर कुछ भी हो, बादलों को मन का भेद नहीं देना चाहिए। पर मन का भेद मन में रख कर भी तो

हाँ दर्द तो होता है। हाथ में रस का कटोरा ले कर चलो और वह छलके नहीं, यह नहीं हो सकता। हाथ में रस का कटोरा हो तो चलना ही नहीं चाहिए, पर बिना चलाए खीर जल जाती है। स्वाद बिगड़ जाता है। सड़ाँध आने लगती है।

क्या हो गया आज उसे! यह साला कवि कहाँ से उठ कर बैठ गया! बड़बड़ किए जा रहा है—ऊटपटाँग। उठ कर चाय पीने चलना चाहिए। चलो, चलते हैं। बारिश हर गड्ढे में पानी भर देती है। चलने वाले को बच-बच कर निकलना पड़ता है। बच बच कर चलने में चाल की लय बिगड़ जाती है। पर लय के लिए, हर गड्ढे में पाँव डालना तो शुभ नहीं है। लय, ताल, रस शायद—किसी भी हाल में शुभ नहीं होते। कम-से-कम उनके लिए तो बिल्कुल नहीं, जो न लय जानते हैं, न ताल और रस के नाम पर सिर्फ गन्ने का रस।

'गन्ने का रस' उसने धीरे-से कहा—और ज़ोर से ठठाकर हँस पड़ा। कुछ लोग आदतन पीते हैं कुछ पेट ठीक करने के लिए। कहते हैं गन्ने का रस पीने से डाइजेस्टिव सिस्टम' ठीक रहता है। और उसे ठीक रखना लम्बी उम्र के लिए जरूरी है।

घर से थोड़ी दूर पर एक छोटा-सा ढाबा है। दो खोखों को एक-दूसरे से चिपका कर एक लम्बी-सी गुफा बना दी गई है। ढाबे का मालिक

मिलिट्री का रिटायर्ड सिपाही। सिपाही रिटायर होते ही बहुत कल्पना शील हो जाता है। इसलिए शायद ढाबे को सब रेस्तरा कहते है, और नाम भी है उसका 'द केव'—यानी गुफा!

गुफा वह इसलिए नही है कि बहुत गहरा है, पर शायद इसलिए कि उसमे पूरे दिन अधेरा रहता है। रात को बत्तिया जलती हैं, पर फिर भी कुछ कोन ऐसे हैं, जिनमे बैठ कर आदमी बाहर की दुनिया से छिपा रह सकता है।

यह हुआ न रेस्तरा—उसने सोचा—'द केव'! क्या नाम रखा है! यह भी कभी कवि रहा होगा। हुह! कभी आदमी रहा होगा।

यह ठीक है। कवि तो कम्बख्त आदमी कम, कवि ज्यादा होता है।

'द केव' के पहले मुहाने पर उसने आवाज दी, 'एक कप चाय।'

साथ ही रेस्तरा के मालिक ने जोडा, 'बाबू को एक कप चाय।'

पर फिर उसकी खरखरी आवाज ने हिकारत से एक जुमला और उगल दिया, 'अरे क्या बाबू, ऐसे मौसम मे चाय पिओगे!'

वह अन्दर घुसते घुसते रुक गया। पलटा और मालिक-रेस्तरा के ठीक सामने खडा हो गया। उसने देखा, अब उसकी सफेद मूछें मुस्करा रही हैं।

वह पलभर देखता रहा, फिर आवाज को यथाशक्ति साफ रखते हुए पूछा, "और क्या पिऊ ?"

"अरे, कुछ दारू शारू का घूट मारो! बदन मे लहका मारेगा। मौसम का मजा आएगा।"

"सुबह-सुबह ?"

वह हस पडा। बोला "अरे बाबू, दारू के लिए क्या सुबह, क्या शाम, और सुबह हुई कहा है! तीन दिन से सूरज नही निकला!"

"तुम दारू भी रखते हो ?"

"भैयाजी, हम तो सब कुछ रखते हैं, तुम पीने वाले तो बनो! कहो तो, उसके बाद का भी" कह कर वह ठहाका मार कर हस दिया।

दो घण्टे बाद जब वह 'द केव' से बाहर निकला तब पूरा 'हाफ' उसकी रगो मे जा चुका था। बदन वाकई लहका ले रहा था। बादलो का रग गहरा हो गया था। हल्की हकी बारिश भी हो रही थी। सडक पर इक्के दुक्के आदमी थे। बसें, कारें बिल्कुल नही। बच्चे चहबच्चा म छपछप कर रहे थे। किनारे बठा एक सब्जी वाला ऊपर तने टट्टर से टपकते पानी को रह रह कर हाथ के गमछे से साफ कर रहा था।

उसके पैर लडखडा उठे। सिर मे एक धुध-सी उठी। आखो पर पानी के शीशे चढ गए थे। पैर यहा वहा बने गड्ढो मे पडने लगे। वह घर की तरफ लुढकने लगा।

घर वह कैसे पहुचा उसे बिल्कुल पता नही चला।

कब वह अपने पलग पर पहुच कर फैल गया, यह भी वह खुली आखो से नही देख सका।

और यह तो उसे बिल्कुल ही समझ नही आया कि कब उसकी बन्द आखो मे वह—वह, हा, वही, हू ब हू वही

कोई त्यौहार है। गाव के बाहर एक नदी है। नदी म बहुत आदमी औरतें नहा रहे हैं। वह भी पानी में खडी है। पानी उछाल-उछाल कर खेल रहा है। पानी तेज चाल से वह रहा ह। सामने सूरज लाल-लाल आखो से झरती किरणो से औरतो के गीले शरीरो पर चिपके कपडो को छू छू कर देख रहा है। औरतें खुश हो रही हैं सूरज को पानी चढा रही हैं। उनके काले, सावले गेहुआ गोरे शरीर चमचमा रहे हैं। जवान औरतो के चेहरो पर लाली है। बूढी औरतो के चेहरो पर वक्त की झिल्ली चढी है।

कुछ ही दूर पर ईख लहलहा रहा ह।

उसने उस किशोरी का हाथ पकड रखा ह।

पहले वह उसे डुबकी दिला देता है फिर खुद डुबकी खाता है। रह रह कर दोनो के शरीर पानी की सतह से नीचे गडमड हो जाते हैं। दोनो मे घुरघुरी-सी गूज जाती है।

लडकी ने कहा ह "चल, और आगे चलना!"

"नही आगे पानी गहरा है।

"तो क्या हुआ, तुझे तैरना नही आता ?"

"आता है।"

"तो चल।'

वे दोनो आगे बढ़ गए हैं। पानी अन्धाधुंध भागा जा रहा है।

वह रुक गया है।

"बस और नही।"

"क्यो नही ?" अभी तो कमर तक भी पानी नही आया। कन्धो तक डूबते पानी म खडे होंगे। चल बढ़।

"नही, और नही। कुआ-ढोकर हुआ—तो ? '

' पागल, बढ़ ना—"

और

हाथ छूट गया है खीचातानी मे वह बहने लगी है वह हस रहा है जोर-जोर से और बढ आगे और उस चीख के शब्द सूरज से टकरा रहे हैं देवता ने अचानक मुह छिपा लिया है

गहरे नशे मे भी वह हल्का-सा छटपटाया है

रील घूम रही है

चारो तरफ हरी हरी घास। घास का विशाल चौकोर मदान—बजरी की सडक बीच मे चौपड की तरह बिछी हुई—मदान को चार हिस्सा मे बाटती हुई। सडक के एक तरफ लाले गुलाब की और दूसरी तरफ गेंदे के फूलो की क्यारिया। चारो टुकडो मे पद्रह पद्रह फुट के फासले पर मौलसिरी के पेड। माच का महीना। पकी पकी मौलसिरी। खिले गुलाब ! खिला गेंदा !

एक मौलसिरी के पेड के नीचे।

शाम का वक्त। सूरज की सुनहरी किरणो का शरीर मन का पिघला देने वाला जाल।

वह बैठा है, सूरज की तरफ पीठ किए। सामने वह बैठी है—सूरज
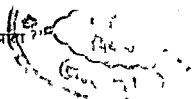
की किरणो मे नहाती हुई—हल्का-सा सिर झुकाए। चेहरे के दोनो तरफ वालो की अमरबेल—लटकती हुई।

उसने बाल छूकर देखे। रेशम हैं। एकदम रेशम !

कहा है, सिर क्या झुका रक्खा है ! '

उसने सिर उठाया है, "इतना सूरज बर्दाश्त नही होता।"

सुनहरी किरणो से तुम्हारा रूप दुगना हो जाता है।"

"अन्दर दिया जला हो तो रूप तिगुना भी हो सकता है। मैंने कभी किसी देवता से कुछ नही मागा।'

मागने से देवता देता कहा है ?"

कितनी खूबसूरत शाम है !"

"मत बोलो, नज़र लग जाएगी।"

"मैं इतनी मनहूस हू ?"

' नही, शाम तुमसे जल रही होगी। '

"मैं शाम की जोड हू ?"

उसने धीरे धीरे कहा है, "तुम किसी की जोड नही हो, सबकी नफी हो। किसी को भी तुम मे से घटाया जा सकता है। काल को, आकाश को दिशाओ को फिर भी तुम

अरे वह क्या है ?" उसने चीख कर कहा है।

'आधी !' उसने देखा है। चीखकर पहले वाक्य में जोड दिया है।

वह भाग रहा है वह भाग रही है वह तेज भाग रहा है वह भी तेज भाग रही है। हाथ पकड रखे हैं हाथ छूट गए हैं बहुत लोग भाग रहे है गुलाब और गेंदे की क्यारियो को कुचलते हुए। फिर कभी हरी होगी मौलसिरी पेडो पर से चू रही हैं फिर कभी आएगी दोनो बिछुड गए है। फिर कभी मिलेंगे सूरज डूब गया है फिर कभी निकलेगा अन्दर का दिया बुझ गया है फिर कभी नही, अब कभी नही, कभी नही, कभी नही वह चीख कर उठ कर बठ गया है।

लाल-लाल आखो से चारो तरफ देख रहा है।

उसने खिड़की से बाहर झांक कर देखा है। न बारिश है, न बादल! बस, सूरज डूब रहा है। शाम हो रही है।

वह फिर घर से बाहर निकल आया है। हैंग ओवर ने सिर भारी कर रखा है। फिर भी पानी में धुली दीखती दुनिया अच्छी लग रही है। आकाश एकदम नीला है। तारे हैं। चाद है। और पेड़ हैं। लम्बी सड़क के दोनो तरफ क्वाटरों के सिलहूट बहुत नशीले लग रहे हैं। बत्तिया जल गई हैं। खम्भों के नीचे रोशनी के दायरों में कही आदमी खड़े हैं और बतिया रहे हैं। वह कन्नी काट कर चल रहा है। कोई जान-पहचान का आदमी न मिल जाए। एक पेड़ के नीचे एक औरत खड़ी है—शायद किसी की इन्त जार में। अचानक उसके पेट में से मतली सी उठी है। उसे याद आया है उसने सुबह से कुछ नही खाया। तो चलें 'द केव' में ही चलें। वहा तो खाना भी मिलता है। उसने जेब में हाथ डाल कर टटोला है। हैं, पैसे हैं। चलें! 'द केव' में ही चलें। गुफा में। घर से गुफा में। गुफा से घर में। घर से

'द केव' आ गया।

गुफा आ गई। प्रवेश करो।

'द केव' में दारू भी मिलती है।

थोड़ी-सी और पी जाए—बस एक क्वाटर! या उससे भी कम। खाने का मजा आ जाएगा। पर फिर कही नही, बादल जा चुके है।

बेयरे ने पूछा है "क्या लाऊं सा'ब ?

"कुछ खाने को, और पहले कुछ पीने को।"

"हाफ!"

"नही, क्वाटर!"

"सा'ब, सुबह भी और शाम को भी!"

"हा सुबह मौसम अच्छा था इसलिए और इस वक्त अच्छा मौसम गुजर गया, इसलिए।"

" 'सा'ब, सेहत—"

उसने बात काट दी है, तुम बेयरा हो या डाक्टर ?"

बेयरा सा'ब, हम क्या ?"

पीते पीते उसने सोचा है—आज छह सात घण्टे वह सपने देखता रहा—पता नही क्या-क्या ! कल घर के लोग आ जाएगे। वह क्या सपना था ? पानी के नीचे से मैंने उसके शरीर को टटोला था मौलसिरी के पेड के नीचे मैंने उसके बालो को हटा कर ओक मे उसका चेहरा भर कर उसके माथे, उसकी बन्द पलको, उसकी ठुडडी को बेताबी से चूमा था पर वह छोटा-सा सपना क्या था याद ही नही आ रहा। और पीता हू। शायद फ्रिक्वेन्सी' मिल जाए ! क्या था कुछ उसमे मीठा था कुछ तीता कुछ

क्या था वह सपना ?

कौन ज्यादा सच होता है, आखो के अन्दर का सपना या आखो के सामने का सपना

सपना तो सभी कुछ है।

पर आखो के भीतर का सपना टूटता है तो खुशी होती है निष्कृति मिलती है और आखो के सामने का सपना टूटता है तो सास टूटने लगती है

ज्यादा सच कौन-सा सपना होता है ?

वह सपना याद आए तो कुछ पता चले।

किसने सिद्ध किया था कि दीखती दुनिया मात्र माया है बडा अक्लमद आदमी था सच वही है जो नही है जो है

वह सपना याद ही नही आ रहा पेट मे चक्रवात उठ रहा है सिर फूल रहा है, शायद फटेगा खरबूज की तरह वह सपना निकल कर बाहर फल जाएगा दूध की तरह नही खरबूज के बीज की तरह उसमे एक और खरबूजा पैदा करने का दम होगा बहुत से सपना का

हा यही था। याद आ गया। यही था याद आ गया !

बेयरा ! ' वह जोर से चीखा है।

' जी सा'ब वालो सा'ब ! इतनी जोर से क्या चीख रहे हैं ? मैं तो

यही खडा था।"

"खाना लाओ, जल्दी! नही तो मैं चारो तरफ सपने ही सपने बिखेर दूगा।"

"अच्छा सा'ब! लाता हू।"

"हा, लाओ—जल्दी। नही तो एक सितारा टूटा।"

बेयरा चला गया है।

उसने सोचना बन्द कर दिया है। सपना जीना शुरू कर दिया है।

एक चारपाई है। कही बिछी हुई। पता नही कहा? वह और उसका घर उसके चारो तरफ भाग रहे है। आगे आगे पत्नी। पीछे-पीछे वह। आगे आगे वह। पीछे-पीछे पत्नी। भाग रहे ह। कभी तेज़। कभी धीमे। कभी एक दूसरे की तरफ देखते हुए। कभी एक दूसरे को अनदेखा करते हुए। कभी कपडो मे, कभी यो ही। चारपाई कभी धरती पर, कभी अधर म कभी-कभी चारपाई भी घूमने लगती है तब उनका 'मोशन' क्या कहलाएगा? हा, 'रिलेटिव मोशन' वही—धरती, सूरज चाद वाला रिलेटिव मोशन रिलेटिव मोशन यहा भी कम्बख्त 'रिलेटिव' आ गया मोशन तक स्वतत्र नही है

वह हस रहा है हसे जा रहा है—जोर जोर से

सपना आगे बढा है

चारपाई के एक पाए क नीच उसका हाथ दबा है। वह ऊपर बठी है। हस रही है। चारपाई के दूसरे पाए के नीचे उसका हाथ दबा है। वह ऊपर बैठा है। हस रहा है। दोनो के हाथ दो पायो के नीचे दबे है। हसी और ठहाको का रिकाड बज रहा है। वह एक दूसरे की तरफ दख रहे हैं। हसन को मन कर रहा है। पर दद भी बहुत है। दोनो के चेहरे टेढे हो गए हैं

ठहाको का रिकाड पूरे 'वाल्यूम' पर बज रहा है

सपना और आगे बढा है

वह चारपाई पर लेटी है। वह पास खडा है। वह सपाट लेटी है।

बदन पर कोई कपड़ा नहीं है। उसकी खाल में झुरियां पड़ती हैं और निकल जाती हैं। वह पास खड़ा है। बदन पर कोई कपड़ा नहीं है। उसकी खाल में झुरियां पड़ती हैं और निकल जाती हैं। चारपाई के नीचे एक दरी बिछी है। वह धीरे से उस पर लेट जाता है—एकदम सपाट। वह दरी पर लेटा है। वह चारपाई पर लेटी है। वह दरी पर लेटी है। वह चारपाई पर लेटा है। दोनों के बदनों पर कोई कपड़ा नहीं है। दोनों एकदम सपाट लेटे हैं। दोनों बर्फ की तरह ठण्डे हैं। नज़रें एक दूसरे पर जमी हैं।

अचानक खाट घूमने लगती है।

दोनों 'रिलेटिव मोशन' में जड़ हो जाते हैं।

उसे हंसी आ रही है।

उसे उल्टी आ रही है।

बेयरा चीख रहा है। मालिक रेस्तरां चीख रहा है।

उसे बाहर धकेला जा रहा है। वह बाहर आ रहा है।

पत्नी ने घबरा कर उसे जगाया है।

'क्या हुआ, ऐसे कैसे लेटे हो? दिन कितना चढ़ गया! किवाड़ खुले पड़े हैं।'

वह जागा है। बाहर की दुनिया से सम्बन्ध स्थापित किया है।

"आ गई?"

"क्या हुआ? तबीयत तो ठीक है। किवाड़ तक अन्दर से बन्द नहीं किए?"

"कभी कभी खुले रहने चाहिए!"

"क्यों? तीन दिन क्या किया तुमने?"

वह चुप रहा। सोचता रहा। फिर बोला, "कुछ नहीं। सोचता रहा। इस घर का छोटा-सा नाम होना चाहिए।"

"घर का नाम? यह कोई अपना मकान है। किराए के मकान का भी कहीं नाम होता है?"

"होना चाहिए। किराए का है तो क्या हुआ ? कल छोड़ देंगे न। अपना नाम अपने साथ ले जाएगें।"

"चलो क्या नाम होना चाहिए ?"

" 'द केव'।"

" 'द केव'। यह क्या होता है ?"

"अरे केव नहीं जानती ? केव मानी गुफा। गुफा, जहां ऋषि मुनि छिप कर तपस्या किया करते थे। जहां भयभीत जानवर रहते हैं। कभी कभी कोई सेना से भागा सिपाही आकर शरण लेता है।"

कहकर वह ठहाका मार कर हंस दिया है। वह भी हंस दी है।

हंसते-हंसते उसने कहा है, "इसे कहते हैं, रिलेटिव मोशन !" मैं हंसा तो तुम भी हंस दी। है ना !"

पहचान से पहले

मुझे लग रहा है मुझे कुछ याद आ रहा है। पर उस वस्तु का कोई भी आकार स्थिर नहीं हो पा रहा। आकार बनता है और चित्र के खिंचाव की तपिश से पिघल कर बिगड़ जाता है। जब बनता है तब भी पहचान कुछ नहीं पड़ता। जैसे कोई बहुत दूर सफेद तख्ती पर टंका शब्द हो जिसका रूप या तो दूर होने के कारण या नया होने के कारण पहचान में न आ रहा हो या शायद तख्ती पर शब्द अदल बदल रहे हों—सच की स्थिरता को अस्थिर करते हुए। पर यह सच है कि नजर मेरी दूर लटकी उस तख्ती पर अटकी है और मैं दिसम्बर के इस आखिरी दिन शाम होने से कुछ पहले धूप में बैठा टकटकी लगाए उसे देख रहा हूँ।

सामने एक ऊंचा मकान आसमान पर चस्पा है। उसके दोनों तरफ दो पेड़ हैं। पेड़ मकान को इशारे से कुछ याद दिला रहे हैं। मकान की छत शाम में इस सुहाने वक्त भी बाकी है। और उस मकान के ठीक ऊपर नीले विशाल कैनवास पर मेरी छोटी सफेद तख्ता बिना किन्हीं कीलों के टंकी है। मैं उस पर उभरती छाया चित्र या शब्द देख पाने की असफल चेष्टा कर रहा हूँ।

यह कभी कभी ऐसा क्यों होता है? मन पर चारों तरफ से एक दबाव सा पड़ता है और सही मानी में पथराई मेरी आँखें कहीं टिक कर रह जाती हैं। जितनी दूर तक मैं सामान्य रूप से देख सकता हूँ वह भी

धुधला हो उठता है। जमीन से भी और आसमान से भी जैसे अनगिनत सीढिया तख्ती पर लग जाती है और अनगिनत, अनजाने भाव, जन बिंब उतरन चढने लगते हैं। उस भीड से भय लगता है और एक प्रकृत आकुलता जसे भाप बनकर घर लेती है। मैं अकसर आसमान साफ होने के बाद सोचता हू, ऐसा क्यो होता है ?

पर सोच कुछ नही पाता। न ही उसे पहचान पाता हू, जा इस समय याद आ रहा है, या जो मेरी इस नियति का आधार है। वैसे सब सामान्य रहता है। बस, शरीर चलता है तो सकोच से, नजर टिकती है तो श्लाध्य धीरज से और मेरा 'मैं' जैसे एक मास पिंड म बुदबुदाता-सा लगता है। मैं सोचता हू, आखिर ऐसा क्या होता है ?

हवा हिलती है ता तख्ती स्थिर रहती है, पूरा आसमान हिलता है, तब भी। आसमान जरा-सा झुक आता है या एकदम पीछे से गायब हो जाता है। मेरा मन करता है कि बिना खुद को भी बताए चीख पडू, पर तख्ती की स्थिरता जैसे गला घोट देती है और मैं चुप उस छोटे से सफेद धब्बे पर उभरते बिंबो को परखता निहारता रह जाता हू। ये अनाखे, सदर पर भयावह, अमूत पर तरल से उगते बिंब मेरी सपूण चेतना को क्यो अपनी जकड मे लेकर मुझे

पत्नी न आकर जगाया है, "क्या देख रहे हो ? उस छत पर कोई नही है, वह खाली है।" कहकर वह हस दी है।

मरे सिर पर जसे किसी ने गीले रेत से भरी डलिया उडेल दी है। मैंने ध्यान से पत्नी की तरफ देखा है। अचानक मुझे भी हसी आ गई है। कभी यह भी उस तख्ती पर उभरती छाया मात्र ही लो रह जाएगी। क्या इसी धाता म, एस ही रूप मे यह उस तख्ती पर आ सकेगी ? पर कहा, उस पर ता एक भा छाया ऐसी नही उभरती जा परिचित हो। या शायद परिचित लाग रूप बदल लेत है ? पर शब्द की रेखा धुधली हो सकती है, क्या उसका सस्कार भी नष्ट हो जाता है ? उसकी गध तक नही आती ? यह क्या होता है, क्योकर होता है ? मैं छत से गिरती काली धूप के ,

दानो पेड जान कहा विला गए है। पर मेरी सफेद मेरी काला मेरा मख-मली चादर पर एक चदियाए सितारे की तरह जुड़ा ह और मैंने मलका को गिरन स रोक रही है। मैं उसकी तरफ देखता रहूँ कि नुक्ते देख और वठा रह सकता हू। और महसूस करता रह सकता हूँ कि मैं वठा हू मैं हू।

तस्ती जस नदी हो गई है बाढ र समय की नदी। गान ग्राता ही नही जाती। ग्रौर उस नदी म वहता मैं जस यहा वहा या ही वह घूम रहा हू। डूवन का जस जरा भी डर नही है। पर गति वढनी है ता भय लगता। है पर ग्रपन ही प्रवाह म क्यार डूवेगा कस ? तूफान बढेगा, गति बहुत तेज होगी तो ग्राखें मूद लेगा। पर ग्राखें मूदना ग्रधिर भयावह है। सीढियो पर चढते उतरते लोग दीखन लगत है। उन्ह दख कर एक बार को तो हमी ग्राती है। ये इतन मारे लोग क्या पागल हो गए हैं। उतरत हैं ग्रौर फिर उसी सीढी से ऊपर चढ जात है। जमीन के पास से गुजरते हुए ग्रासमान की तरफ निकल जात है ग्रौर म देखता हू कि फिर लौटे चल ग्रा रह है। य सव पागल है। चढन उतरन क इस निरथक श्रम म इनकी मास-पेशिया कमो तन रही ह। क्स य उजड, डूव से लगत ह। पर रुकना तो जमे इनके वम की वात है नही। कौन लोग है य ? मै इ ह पहचानता तक नही या शायद इस गहरी दह- लीज वाली सीलन भरी काठरी म रहत रहत, निर थक श्रम करते, इनके चेहरे वदल गए है। इनके ग्राकार मरी कल्पना तक की पकड मे नही ग्राते, फिर भी, मै मोच ता रहा ही हू, कौन हे य लोग ?

ग्राख वद करके साचने से विव मिटन ह। पिघलकर फिर ग्रपना ग्राकार वदल लन हैं, मेर देखते देखते। मुझे कष्ट हाता है। किमी का भी रूप वदल लेना मुझे ग्रच्छा नही लगता। इस वाहर की दुनिया का दखन दखते, उसमे जाने-जीने एक ही वस्तु को लव ग्ररस तक एक ही रूप, एक ही ग्राकार म दखन की मेरी ग्रादत वन गइ है। वहा कुछ नही वद-

लता, यहा पल छिन वदलता है। इसीलिए मैं महसूस करता हू कि मैं, निराधार, नदी पर ठा हू और उसकी गति के साथ यहा वहा तैर-घूम रहा हू। आखें वद किए हू, खोलूगा तो याद आएगा कि

"तुम्ह उठना नही है ? रात हो गई है।"

पत्नी न मुझे फिर जगाया है।

मैंन आख खोलकर देखा है और पत्नी को पहचानने की कोशिश की है।

'चलो नीचे सर्दी वहुत बढ गई है।'

मुझे याद आया कि मैं तीसरे पहर स इस कुर्सी पर वठा हू।

इस समय व.कई सर्दी महसूस हुई। मुझे बहुत पहले नीचे चले जाना चाहिए था।

म उठकर खडा हो गया। अगडाई ली। फिर आसमान की तरफ देखा। चारो तरफ। काले पारे का बना विशाल गुम्वद। हम सव वद। वजन झेलते हुए। कही रोशनी नहीं। निकल जाने की राह नहीं। हम

पत्नी न कहा 'अव फिर क्या हुआ ?'

मैंन कहा 'कुछ नही।"

उसने कहा पागल हो जाओगे। तुम्हारे लच्छन वता रहे है।'

मैंने उसकी तरफ देखा फिर उसे वाह से पकडकर कहा, 'तुम्ह इस इतने अधेरे इतन वडे गुम्वद म रहते डर नही लगता ?"

'म अपने कमरे म रहती हू गुम्वद म नही "

'वह भी तो "

उसने टोक दिए, 'अच्छा, तुम बकार की वातें मत करो। आदमी वनो। नीच चलो। यही सोना हो तो मुझे वता दो। विस्तर ऊपर ही डाल देती हू। नीचे तुम्ह डर लगता हो तो मुझसे।"

मैं चुपचाप नीचे उतरने लगा। पत्नी मरे पीछे-पीछे।

मेरे पास एक ही कमरा है जिसमे हम सब रहते हैं। मैं, पत्नी और कुछ बच्चे। सर्दियो म सव चारो तरफ के खिडकी दरवाजे वद किए वठे रहते हैं। अगीठी बीच मे सुलगती रहती है। कभी-कभी जब कोई

किसी से बोलता नही और सब अपनी अपनी जगह अगीठी पर नजर जमाए होते हैं तो लगता है जसे कोई आदिम परिवार एक गुफा मे सुबह होन की इतजार कर रहा है। मैं अकसर पत्नी को यही बात कहता हू तो वह कहती है "आपस म प्यार-मोहब्बत हो तो "

मैं हस दता हू। मजबूरी को लोग प्रेम कहने लगे हैं।

आज भी हम सब उसी तरह बठे हैं। तीन चारपाइयो पर हम सब सोते हैं। बाकी सब अगीठी के चारो तरफ बठे हैं। सिफ सात साल का लडका अपने बस्त मे न जाने क्या कर रहा है। पत्नी ने खाना पीना निपटा दिया है और लिहाफ से अपने आधे शरीर को ढके, पीठ को पीछे दीवार से लगाए, सामने रखे पीहर से आए उस बडे ट्रक को देख रही है जिसमे घर के अधिकाश कपडे-लत्ते बद हो जाते हैं। उसका कहना है कि इस टक की चादर इतनी मोटी है, भगवान न करे कभी घर मे

मुझे उसकी इन बातो से बडा भय लगता है। खुद मैं चाह जो सोचता रहू पर पत्नी जरा भी अशुभ साचे तो मुझे लगता है कि बस अब डूबे, अब डूबे। वसे सोचत हम दोनो हैं और इसीलिए एक दूसरे से डग्ने है इसीलिए एक-दूसरे के प्रति चुप रहन ह जाने कब किसक अशुभ की छाया दूसरे पर पड जाए।

मैंन उसास-सी लेकर कहा, "यह साल भी बीत गया।"

पत्नी चुप रही।

मैंन फिर कहा, शायद मैं खुद स डर रहा था, 'जरा दरवाजा अच्छी तरह बद कर दो, हवा आ रही है।

उसन उठकर पानी पिया, दरवाजा बद किया और फिर आकर बठ गई, चुपचाप, गुमसुम।

मैंन धीमे स कहा है, सोए।'

सब धीरे धीरे सान के लिए खिसरन लगे है।

पर वह लडका अभी भी बस्त म कुछ कर रहा है। बस्त म स कभी

कुछ निकालता, कभी कुछ। जाने क्या कर रहा था।

मैं उसकी तरफ मुडा और ज़रा ज़ोर से पूछा, 'क्यो रे, तुझे नही सोना?"

लडका कुछ नही बाला।

पत्नी मेरी ओर देखकर हस दी। पर बोली कुछ नही।

फिर मै बहुत देर चुप बठा रहा। सामने एक कील पर टगे शीश को दखता रहा। पर उठकर, सदा की तरह शीशे म चेहरा दखन की तबीयत नही हुई। कई दिनो से मैंने अपनी इस आदत पर सयम कर रखा है। जब से इस लडके ने चारपाई पर से गिराकर शीशे के दा टुकडे किए हैं, मुझे ही अपना मुह जाने कसा लगता है चिरा चिरा, टढा टेढा। दोमुहा-सा।

पत्नी न बस होशियारी की है। एक टुकडे को दूसरे पर जमाकर ज्यो का त्यो फ्रेम म फिट कर शीशे को कील पर टाग दिया है। मुझे याद रखना पडता है कि चेहरा नहीं देखना है, शीशा फूट गया है नही तो

जान कितना वक्त गुजर गया है। मै और पत्नी ज्यो क त्यो बठे है और सब सा गए है, सिवाय उस लडके के।

मैंने खीझकर ज़ोर से कहा है "क्या हो रहा है सामू सो जा, क्या कर रहा है तू?

और सोमू न उत्साह से एक झक सफेद कागज़ मेरी आखा क सामन लाकर टिका दिया है। मैं देखता हू। यह क्या है? कितनी सारी लकीरें उल्टी-सीधी दिशाओ म, बिना काई रूप आकार ग्रहण किए कागज़ पर लियडी पडी है और जस कुछ खोज रही हैं, जस कुछ बाधन की कोशिश कर रही है।

'यह क्या है?" मैंन ठडक भरे लहजे म पूछा है।

लडके ने बताया है 'गुफा से निकलन का रास्ता। यह गुफा है।"

कहकर उसन पसिल स बन एक गोल से घ व पर उगली रख दी है और साथ ही हटा ली है। मैं उस देखता रह जाता हू।

अचानक घर की चारो दीवारें एक तरफ खिसक गई हैं। सामने वहा ऊचा मकान है। दोनो तरफ दो पेड प्रहरियो की तरह खडे हैं। तख्ती गायब है, पर छत इस समय कोरी नही है। कोई है। मैं उसे, चारो तरफ बहते अधेरे के बावजूद पहचान सकता हू।

मैं सोचता हू, ऐसा कसे होता है ?

पहला अक्षर

मैंने पन की गाठ खोली। निब को कागज तक ले गया। झटके से वापिस खीचा। दोबारा गाठ लगाई और दोनो हथेलियो म चेहरा लपेटकर चुपचाप बठ गया।

मुझे उसे खत लिखना है। बहुत मन है।

पर पहले अक्षर को लेकर बहुत दुविधा है। पहला अक्षर—यानी सबोधन। खत लिखन मे यह पहला अक्षर या शब्द लिखना ही सबसे मुश्किल काम है। किसी ने मुझे एक दिन समझाया था सारा खत पहले लिख डालना चाहिए। जसे किसी और का लिखा खत पढते है उसे पढना चाहिए। पहला शब्द यानी सम्बोधन खुद ब-खुद उभर आयेगा —दिमाग म। बस वही सबसे उपयुक्त सम्बोधन होगा। मुझे याद है एक वार मैंने भी यह प्रयोग करने की कोशिश की थी। पर लाख जोर मारने के बावजूद एक भी वाक्य नही लिख पाया था। उस दिन मुझे एहसास हुआ था कि हर खत का मजमून इस एक अक्षर की मुट्ठी म होता है। जो पहला अक्षर—या शब्द बिना सकोच के नही लिख सकते, वह वह खत क्या लिखेंगे ?

मैं चाहता हू कि आज उसे खत जरूर लिखू।

पर कितने ही शब्द हैं जो निब के कागज के पास आते ही आखो मे उभरते हैं। हर शब्द पहला शब्द बनना चाहता है। मैं दुविधा मे

फस जाता हू। पन को फिर गाठ लगाता हू और चुपचाप आखें मूदकर बठ जाता हू। किसी भी पोज म।

गर्मियो की दोपहर। छुट्टी का दिन—इतिवार। न कही जाना, न किसी को आना। बाहर चिलचिलाती धूप। अ दर पखे के नीचे गम हवा के छोटे छोटे चक्रवात। शरीर सूखा हुआ, चित्त चिपचिपा और मस्तिष्क मे शून्य के दबाव स पदा हुई साय-साय। ऐसे मे भला कोई किसी को खत लिख सकता है ? हा, मुश्किल तो है। पर हा मुश्किल लिखना आज जरूर है। जिद है। मालूम नही क्यो ?

दरअसल मैं लिखने बैठने से पहले सोया हुआ था। सोया हुआ आदमी तीन हिस्सो म फट जाता है। उसके तीन रग हो जाते है—गहरा काला, भूरा, सुनहरा। तीनो हिस्सा से कुछ छायाए उभरती हैं और तरह तरह के खेल खेलती हैं। आपस मे। एक दूसरे को डराती हुई। एक-दूसरे का मिटाती हुई। एक-दूसरे को खेल मे सहारा देती हुई।

मैं भी शायद कुछ दर पहले फटा हुआ था। पिघला पडा था। कोई भयानक-सा खेल, मेरी अपनी परछाइया आपस में खेल रही थी। खिडकी के शीशो से आई उबलती धूप ने मुझे जगा दिया, नहीं तो खेल शायद काफी देर और चलता। मैं जाग गया। उठकर बठ गया। सीधा मेज पर आकर लिखने की मुद्रा बना ली। उसे खत लिखने की जिद बना ली। पर

मैं मानता हू कि उसको खत लिखते ही मेरे तीनो हिस्से फिर एक हो जायेंगे। मेरे अ दर बाहर का रग एक हो जायेगा। उसमे काला भी होगा, भूरा भी और सुनहरा भी, भूरा काले मे डूब जायेगा और सुनहरा उसी काले मे जरा-सी शेड देगा। मुझे मालूम है, मेरे अ दर सुनहरा इतना ही है कि काले को जरा-सी झलकी दे दे। बस जरा-सी। भ्रम पदा करने के लिए।

इसीलिए मैं वजिद हू कि उसे खत लिखू। पर समस्या वही है। पहले अक्षर की—सम्बोधन की। दरअसल मेरे तीनो रगो के, अलग अलग शब्द हैं। तीनो आपस म बहुत झगडा करते हैं। अपना अपना

अधिकार जताते हैं। मुझे जड कर देते हैं और जब भी कभी मैं उसे खत लिखने बैठता हू, यही तमाशा चलता रहता है। मन की गाठ खोलता हू निब को कागज के पास तक ले जाता हू, वापिस खीचता हू, फिर गाठ लगाता हू और सिर लटका कर बैठ जाता हू।

न खत लिखा जाता है, न खत लिखने की इच्छा ही मरती है।

मैंने एक दिन खुद से कहा था 'अपने को काले रंग के आधिपत्य से मुक्त करो।'

एक दिन उसने भी कहा था "तुम्हे उगता सूरज नही दीखता, बस डूबते सूरज की चौंध से मरे जाते हो। तुम अन्धे हो।'

हा, वह ठीक कहती है। दरअसल मेरे घर के आगन मे एक कुआ है। उसमे पानी नही है। बस, जब भी घर की किसी दीवार से कोई ईट या छत का कोई पत्थर टूट कर गिर जाता है, हम उसे उस कुए मे डाल देते हैं। वह कुए की गहराई मे डूब जाता है और अपना भूरापन या सुनहरापन खोकर कालिस ऊपर फेंकने लगता है। मुझे इस कालिस मे नहाने का बहुत शौक है। रात को—मेरी रात बारह के बाद शुरू होती है—मैं उठता हू कुए की कगार पर खडा हो जाता हू और ऊपर आती कालिस मे अपने सिर को खूब नहलाता हू वह कालिस गर्म भाप की तरह होती है जब सिर पिघलने लगता है तो मैं कुए की कगार से पीछे हट जाता हू। मुझे इस सबसे बहुत राहत मिलती है अन्दर के तीनो रग या तो उसे खत लिखने से एक होते हैं या काली खौलती भाप मे नहाने से एक के बाद ही सुनहरी शेड काले रग का मुह तोड देती है और खौलती भाप में नहाना सुनहरी शेड को पूरी तरह निगल जाता है।

और

और काले और सुनहरे के इस द्वन्द्व में मेरी जिन्दगी का भूरापन हमेशा हतप्रभ-सा खडा रहता है, खोए हुए बच्चे की तरह

जो भी हो, आज उसे खत जरूर लिखना है। आज अन्दर के सुनहरे रग को फलने का पूरा मौका दूगा। मुझे मालूम है मुझमें सुनहरा रग

कम है। पर सुनहरा रंग तो सुनहरा होता है ना। उसकी एक किरण कालिख की सारी किलेबन्दी को फोडकर अन्दर घुस सकती है, उसे तहस नहस कर सकती है। भूरे को उसके चंगुल से छुड़ा सकता है। उसकी जडता को पिघला सकती है। ठहरे हुए ग्रेनाइट ग्रे को चंचल मरकरी ग्रे बना सकती है सुनहरी किरण क्या नहीं कर सकती पर पर सुनहरी किरण में चौंध बहुत होती है, उससे आंख मिलाना हां, बहुत मुश्किल है। मेरी काले अंधेरे की अभ्यस्त आंखें ? नहीं संकोच नहीं करना है सुनहरी किरण मेरी आंखों को ठहराव भी देगी शक्ति भी देगी, और

पर यह पहला शब्द तो अभी भी आंखों के पानी में फैलकर धुंधला हुआ जा रहा है। साफ दीखे तो साफ साफ पढ़कर उस कागज पर उतारूं।

आंखें साफ करनी पड़ेंगी

हां, अन्दर उभरते अक्षरों को पढ़ने के लिए भी आंखें साफ करनी होती हैं।

पर कैसे ?

मेरे सामने एक कागज है। बिना धारियों का, एकदम कोरा। सफेद झक। मेरे हाथ में कलम है। बन्द कमरे में खिड़की से धूप आ रही है। जिस तरफ से हवा आती है, वह दरवाजा बन्द है क्योंकि हवा गर्म है। ऊपर पंखा एक लय में घूम रहा है। हवा मेरे सिर के चारों तरफ घूम रही है। बाहर की हवा से कम गर्म। मैं बैठा हूं। सोच रहा हूं। वही पहले शब्द के बारे में

अचानक मैंने कलम की गांठ खोली है और सामने रखे कोरे सफेद कागज पर कुछ लकीरें खींचना शुरू कर दिया है।

यह मैं क्या कर रहा हूं ? एक कागज ही खराब कर दिया मैंने

ये कैसी रेखाएं हैं ? एक भी रेखा सीधी नहीं है।

पर न हो सीधी। इन रेखाओं ने मिलकर कागज़ पर एक आकृति उभार दी है। आकृति ? हा, उसकी आकृति। उसी की आकृति। धुधली बिल्कुल नही है। चेहरे के नक्श कागज को काटे दे रहे हैं। नय-नक्श है भी तो उसके कितने तेज़। कागज़ तो कागज, नज़रो के किनारो को काटते हुए चलते है। पिघला, नही थिरथिराता रूप फलता है पारे की तरह

पर रेखा चित्र बनाना मुझे आया कैसे ? मैंने तो कभी यह सीखा नही। बिना सीखे जो चीज़ आ जाती है, वह सच होती है। अन्दर भीतर का यह रेखा बिम्ब सच है तो सकोच कैसा ? फिर तो कोई भी पहला अक्षर बन सकता है। उसके मानी वही होंगे जो इस अनजाने में बन रेखा चित्र के हैं। हा यह तो वाकई सच बात है, सच है तो

तो दूसरा कागज़ लू ? मन की गाठ खोलू ? पहला अक्षर लिखू ?

पहला अक्षर

क्या लिखू ?

अब भी प्रश्न ज़िन्दा है ?

लगता तो है। कागज़ कट गया पर दुविधा नही कटी।

दुविधा वही कटेगी। पहला अक्षर क्या हो वही बतायेगी।

सिर्फ वही

और कोई नही बता सकता

गर्मी की शाम। ग्रे और सुनहरा चन्द्रमा ऊपर से बरसता हुआ। हवा गुम-चुप-सुस्त। मैं हाफता हुआ उसके घर की तरफ भागता हुआ, आदमियो, कारो बसो, साइकिलो, सडको को पार करता हुआ—पदल। अपना अकेलापन मुटि्ठयो में बन्द किये। अपने कालेपन को पीछे-पीछे आने की सुविधा देता हुआ। हाथ में रेखा चित्र लिये अपना बनाया हुआ रेखा-चित्र, उसका रेखाचित्र

मैंने दरवाजा ठेला है और उसके घर में घुस गया हू।

वह ड्राइग रूम में बैठी कोई किताब पढ रही है

मैं ठीक उसके सामने बैठ गया हू, अचानक।

वह चौंकी है, पूछा है, "तुम ?"

"हाँ, मैं।"
'क्या हुआ ?"
"होना क्या है। एक बात पूछने आया हूँ।"
"बात ? कैसी बात ? क्या हुआ ?
मैंने पूछा है, "मैं पूछने आया हूँ कि तुम्हें मालूम है ना, खत में सबसे पहले यानी ऊपर सम्बोधन के तौर पर कुछ लिखना होता है "
वह हँस पड़ी है, कहा है, "मालूम है।"
"मैं तुम्हें क्या लिखूँ ?"
'मुझे ?"
"हाँ, तुम्हें। आज खत लिखने बैठा था कि पहला अक्षर सूझा ही नहीं। तुम बताओ।"
"मैं बताऊँ ? पहला अक्षर भी मैं बताऊँ ? भई, इसमें क्या मुश्किल है। देवनागरी वर्णमाला का पहला अक्षर 'अ' है।"
"पागल हुई हो क्या, अक्षर नहीं, शब्द। तुम्हें एक खत लिखना चाहता था। उसमें सम्बोधन के तौर पर एक शब्द लिखना होता है ना, वह पूछ रहा हूँ, तुम्हारे लिए "
वह गम्भीर है। ध्यान से मुझे देख रही है। जैसे बात समझने की कोशिश कर रही हो। पल भर रुककर बोली है, "अच्छा आ, तो पहला अक्षर नहीं, तुम्हें पहला शब्द चाहिए, यह तो और भी आसान है। 'अ' से 'अनार। तो यूँ समझो कि पहला शब्द अनार होता है।'
मैं एकदम झुँझला उठा हूँ, "तुम कुछ पागल हो क्या ?"
नहीं तो।"
"तो क्या बोल रही हो ?"
क्यों, इसमें क्या गलती है। 'अ' से अनार।"
'मैं यही पूछ रहा हूँ
' तो क्या पूछ रहे हो ?"
मैं चीख पड़ा "कुछ नहीं।"
तो चाय पियोगे ?"
"नहीं।"

कुछ और ? '

नही । कुछ नही । जाता हू ।

कुछ देर और बैठा ।

क्या कम बैठकर ?

'ना, करन को ना कुछ नही है। अरे यह तुम्हारे हाथ में क्या है ?

मैं लगभग सुन हो गया हू । कुछ बोलते नही बन रहा है। चुपचाप हाथ का कागज उसके सामने कर दिया है।

यह क्या है '

'तुम देखो पहचानो।

कुछ उलजलूल लकीरें सी हैं।

मैं तो जो भी करता हूं सब ऊलजलूल होता है। तुम्हें हमेशा यही लगता है।

तो बताओ ना यह क्या है ?

जब पहला अक्षर नही मिला तो बैठे बैठे यह बन गया।'

बन गया तुमने बनाया नही !"

'हा बन गया। सहज भाव से।"

'चलो पर है क्या ?"

पूछे चली जा रही हो। तुम्हें दीखता नही यह तुम हो।'

'मैं ?"

हा तुम।

वह आखो को पूरी तरह फलाकर हस दी है। हस रही है। हसे जा रहा है। उठकर खडी हो गई है। उसके पेट म बल पड रहे है। हसते-हसते वह कमरे म यहा से वहा और वहा से यहा तक घूम रही है। हतप्रभ उसे देख रहा हू पर लग रहा है अ दर की कालिस, अन्दर की जडता, सब कुछ सुनहरा होता जा रहा है सब कुछ बदल रहा है

मैंने धीमे से पूछा है इतना हस क्या रही हो ?'

धीरे धीरे वह चुप हो गई है। फिर आकर सामने बैठ गई है। आखें मुझ पर गडा ली हैं। पुतलिए अपनी कटोरियो म पारे की तरह काप रही

है, छलछला रही है

"तो तुम्हारे लिए मैं यह हू ।"

"तुम नही, तुम्हारा अक्स ।"

'वही तो। तो तुम ऐसा करो। इसके नीचे मेरा नाम लिख दो। मेरा मतलब है कि अपने पहले अक्षर की तलाश को नाम दे दो। शायद तुम्हारी समस्या हल हो जाये।"

मैंने ध्यान से उसकी तरफ देखा है। दो बडी-बडी बहुत बडी, हल्की नीली आखें बहुत मनोहारी लग रही हैं। उसकी हसी कितनी गर्म होती है। अन्दर की समूची कालिस पिघलने की जगह सीधी भाप बन कर गायब हो रही है। ग्रेनाइट ग्रे पर सुनहरा रंग हावी हो रहा है।

मैं उठकर खडा हो गया हू। मेज पर रखा कागज उठाकर मैंने फाड-कर फेंक दिया है। वह बैठी है। हस रही है।

क्या, फाड क्यो दिया। पहले अक्षर की तलाश खत्म हो गई ?

मैंने कहा है, "हा, सम्बोधन के पहले अक्षर की तलाश खत्म हो गई है।"

एक कदम आगे बढकर उसके माथे पर आई बालो की एक लट को चुटकी से पकडकर मैंने पीछे हटा दिया है। पारे के रग का चेहरा साफ हो गया है। पलक भर कर देखा है और कमरे से बाहर निकल आया हू। शब्द कहा असमर्थ होता है, मुझे पता चल गया है।

अवरक के फूल

मरे घर म टेलीफान नही है। घर स सात मिनट के रास्त पर एक टेली-फान है। मैं वहा जाता हू और वाहर की दुनिया स सम्पक स्थापित करता हू। वापसी मे कभी खुश होता हू तो कभी उखडा हुआ। पत्नी पह-चान लेती है कि मर साथ क्या हुआ है।

उस दिन शाम के सात वजे थे।

घर से निकला तो महसूस हुआ वाहर कुछ अतिरिक्त अधेरा है। सडक की वत्तिया कुछ मन्दी जल रही थीं। मैं धीरे धीरे टलीफोन-वूथ की तरफ चल दिया। कालोनी के मुहान पर खडी पान की दुकान से मैन पान खाया। पान म मूली के अ दाज से खाता हू। कालोनी से वाहर होते-होत पान खत्म हो गया तो जीभ को मैंने जबडो की जड और जीभ की तलहटी की सफाई पर लगा दिया। चाहता था कि बोलने की मशीन मे कही कूडा कचडा न हो। जिससे वाहर की दुनिया मेरी वात का गलत समझने की सुविधा चुरा ले। मेन रोड आ गइ। भागते ट्रफिक ने मुझे चौकन्ना कर दिया। यहा तक कि एक वार मैंन कपडा पर भी नजर मारी। कमीज और पाजामा। पाजामे म उवकाई पदा करने वाली सिलवटें। एक जगह से सिला हुआ और मैंन सोचा टेलीफोन वूथ कितनी अच्छी चीज है। अन्दर खडे होकर किसी भी ढ्ंग से किसी से भी, कैसे भी वातें कर सकते हो। मैंन फिर सोचा टेलीफोन बूथ कितनी सुरक्षित चीज है।

मेन राड से मुझे बाईं तरफ मुडना था। मै मुड गया। कीकर की आदमकद झाडियो के पीछे टेलीफोन एक्सचेंज है और एक्सचेंज की बिल्डिंग की बगल म साढे छ फुटा बूथ है। बूथ मे रोशनी जलती रहती है। बूथ की दाईं दीवार पर, घबराई हुई, दीवार पर सिर टिकाए खडी औरत की तरह चिपका हुआ टेलीफोन है। अठन्नी डाला और बात करो। कोई भी अठन्नी डाले और बात करे किसी से भी

दूर से मुझे दीखा, बूथ म कोई है।

इ तजार करना पडेगा।

कर लेंग। बात तो करनी ही है।

दस ही कदम आग बढा हूगा कि दीखा बूथ मे कोई नही है।

यह क्या हुआ ?

मैं रुक गया। साचन लगा। सोचते साचत कुछ कदम पीछे हटा। उस जगह पहुचा जहा स बूथ म कोई दीखा था और इस बार बिल्कुल साफ दीखा कि बूथ म काई है और टेलीफान पर बात कर रहा ह गदन हिला हिलाकर। मै वहीं खडा रहा। आग नही बढना चाहिए। जब वह चला जायगा ता आग बढूगा। बहुत ही शिष्ट आदमी मालूम पडता है। मरे आग बढत ही चला जाता है। मुझे भी शिष्टता बरतनी चाहिए। आगे बढना ही नही चाहिए मैं खडा रहा वह बातें करता रहा मै खडा रहा और उस बातें करत दखता रहा वह बातें करता रहा और उसन एक बार भी मेरी तरफ नही देखा मै झुझला उठा। पर आगे नही बढा और लटकत वक्त का बोझ जब सहन नही हुआ ता मै मुडा और अपने घर की तरफ वापिस चल दिया बिना फोन किए

मै घर लौट आया।

पत्नी न पूछा, "क्या हुआ ?"

मैंन कहा, 'अजीब लाग है। टलीफोन पकड लेत हैं, ता छाडत ही नही। बनियात रहत है। बोलते रहते हैं, चाहे "

"तुम्हे कहना चाहिए था कि "

अचानक मैं चीख उठा, "वह गलत है। ऐसा कभी नही करना

चाहिए। वह एकदम गलत है।"

"गलत है तो चीख क्यों रहे हो ?"

मैं चुप हो गया और बहुत देर चुप रहा। फिर उठा और अपनी चारपाई पर लेट गया। आँखें खुली रखी। खुली आँखें छत पर टिकी रहीं। सफेद छत। बिजली के तार से दो हिस्सों में बटी हुई। कभी नीचे खिसकती कभी ऊपर कभी एक हिस्सा ऊपर तो एक नीचे और कभी दोनों हिस्से गायब मैंने महसूस किया —पत्नी बराबर की चारपाई पर आकर लेट गई है

मैं फूलों को उनके नाम से नहीं उनकी गंध से पहचानता हूँ। पहचानता था। अब तो फूल मुझे अच्छे ही नहीं लगते। न इनकी सब्जी बन सकती है न सलाद। पर उन दिनों फूल मुझे रोटी से भी ज्यादा खूबसूरत लगते थे। गुलाब का फूल गंध से और कास का फूल अपनी गंधहीनता से मेरा मन मोह लेता था। दोस्त लोग मुझे चिढ़ाते भी—पागल है। कहता है—काम का फूल उतना ही खूबसूरत होता है जितना गुलाब का या गेंदे का, या रात की रानी का। मैं कहा करता था कास के फूल का कसूर यही है कि उसमें गंध नहीं होती। पर छोटे नालों के किनारे खड़े ये कैसे सलौने लगते हैं। मुझे तो रात की रानी पर बहुत गुस्सा आता है। इतनी दूर तक गंध फेंकती है कि फूल देखने की इच्छा ही खत्म हो जाती है। गंध अपनी जगह पर रूप और रस

एक फूल अबरक का भी होता है। यह उगता नहीं, बनता है। अबरक की पहाड़ी के ऊपर खड़े हो जाओ। सूरज उगा उगा हो। पूरी पहाड़ी पर सफेद फूल चमक आएगा। सूरज के चढ़ने के साथ-साथ रंग बदलेंगे। पर बादल आते ही पलक झपकते सभी फूल गायब हो जायेंगे। न इन फूलों में गंध होती है न इनका रूप पकड़ में आता है फिर भी मन पिघल कर पूरी पहाड़ी पर बिखर जाता है। शायद पूरे वातावरण की गंध ही इनकी गंध होती है और सूरज की किरणों से बना हुआ इनका रूप।

सौंदर्य की ऐसी जटिल अमूर्तता वह भी खुली आँखों से देखती हुई कितनी लम्बी बाँहें हों कि कोई इस रूप को अपने पास समेट सके

रात के बारह बजे होंगे। मैं उठा। किवाड़ खोले और बाहर निकल आया।
बाहर घुप अंधेरा है। सड़क की बत्तियां नहीं जल रहीं। जाने क्या... अब
रक के फूल सब सो रहे होंगे। आसपास न गुलाब है, न गेंदा, न क्वीन-को-
रानी कालोनी से लगकर बहते नाले पर कुछ कास के फूल खड़े हैं, पलकें
फड़फड़ाते हुए। दीख नहीं रहे पर खड़े हैं, मैं जानता हूं। उनसे कन्नी
काटकर मैं बाहर निकल आया हूं। मन रोड पर। ट्रैफिक इस समय नहीं
है मैं चल रहा हूं टेलीफोन-बूथ की तरफ उसी जगह पहुंचा हूं जहां
से शाम को मैंने किसी को बूथ में खड़े देखा था वह अब भी खड़ा है
मैं फटी आंखों से उसे देख रहा हूं वह अब भी उसी तरह गर्दन हिला-
हिलाकर बातें कर रहा है मैं उसे देख रहा हूं और वह बातें कर रहा है
मुझे नहीं देख रहा देख भी नहीं सकता मैं अंधेरे में हूं वह रोशनी
में

उसे डिस्टर्ब नहीं करना चाहिए। मैं वापिस मुड़ चला हूं। गंध
हीनता की गंध मेरे दिमाग में चढ़ने लगी है

कहते हैं कुछ चेहरे हंसते हैं तो लगता है जैसे रो रहे हों। और कुछ
चेहरे रोते हैं तो भी लगता है जैसे हंस रहे हों। यह चेहरे की बनावट की
करतूत नहीं है मन की बनावट का खेल है। मैं अपने चेहरे को नहीं पह-
चानता। मन को भी नहीं पहचानता। पर इस समय मेरा मन रोने को
कर रहा है। मैं सड़क पर चल रहा हूं। रोना रुककर चाहिए। सड़क पर
कोई रुके कैसे? रुककर खड़े होने की जगह न हो तो रोये कैसे? ठीक
है, रोना नहीं है। चलते रहना है वैसे भी ऐसी बिना भीड़ की सड़क
हमें कब कब मिलती है। चलने का मजा ही ऐसी सड़क पर आता है।

मैं चल रहा हूं सड़क पर सीने उंगली पर दोनों बाहों से रोना
बांधे

चला जा रहा हूं। घर से दूर होता हुआ। दूर खिसक कर घर 'स्वीट'
लगने लगता है। 'होम स्वीट होम' का मुहावरा किसी ने घर से बहुत दूर
रहकर बनाया होगा। सड़क के दोनों तरफ़ खड़े पेड़ों के सिलहुट हिलते
हैं तो रोना बाहर आने की बेताबी में छाती हिलाने लगता है। रो लूं तो
शायद चेहरा ठीक हो जाये। हवा चलनी बंद हो जाये। सिलहुट कांपना

व द कर दें। बल्ब। की चमक तज हो जाए। अबरक के फूल जाग उठें। दूर खोय फूला की ग ध लौट आए। मैं आदमी बनन के लिए मजबूर हो जाऊ। पर कही चलना ब द हो, खडे होन को जगह मिले तब तो नही रोना नही है, चलना है चलना रोने से ज्यादा कीमती होता है। चलते-चलते आदमी हस सकता है, लोग खुश होते है रोता आदमी धरती का बोझ बढाता है यानी जोर से नही रोना चाहिए अन्दर कौन किसी के झाक कर देखता है

दोनो तरफ़ झुके खडे पेड और सडक, खुद खुलता जाता कालीन। काला। कालीन ट नाबी होता है। एक दिन उन्नाबी कालीन पर रखे उसक दोना पैरो को देखकर मैंने कहा था 'य पर देखकर मुझे कसा लगता है, तुम्हे मालूम है ?"

"नही कसा लगता है ?"

"जसे कोई ताजे खूबसूरत पर बनाकर यहा रखे भूल गया हो।"

तारीफ कर रह हो या पास्ट माटम।"

पोस्ट माटम क्यो ?"

"शरीर से पर अलग कर लिए।"

मैं हस पडा था 'जो दीखेगा उसी के बारे म तो बोलूगा।'

उस दिन से उसन मिलना व द कर दिया था।

तब से उससे सिफ फोन पर बात कर सकता हू।

एक दिन उसने पूछा था, 'यह प्लेटानिक लव' की धारणा तुम्ह कसी लगती है ?'

मैंन तपाक से कहा था, "जसे कोई किसी के नाम लम्बी-सी अर्जी तो लिखे पर नीचे अपने दस्तखत न करे।'

वह भी हस पडी थी। हसते-हसते उसने कहा था, "तुम्ह तो अर्जी-नवीस होना चाहिए था। अर्जी तुम लिखो, दस्तखत कोई और करे।"

और अब उससे भी सिफ फोन पर ही बात हो सकती हैं।

/

/

काला कालीन खुलता जा रहा है। दोना नग्फ मनरी मिर भुकाए खडे है। म बढा चला जा रहा हू। कहा जा रहा हू, मुझे मालूम नही है। रोना अब नही आ रहा। शायद मैं समझ गया हू कि चलना गान मे ज्यादा कीमती होना है। चलते चलते आदमी हस सकना है। चाहे पागल हसी ही हसे।

मुझे भी उस दिन बहुत हसी आ रही थी। पागला वाली हमी। क्या यह याद नही। हसते-हसते ही मैंने उसका दरवाजा खटखटाया था। वह घर म अकली थी। उसन पूछा था 'तुम ? इस वक्त ? घर म और कोई नही है।'

"तो ? चला जाऊ ?'

"बता तो रही हू। घर में कोई नही है। मैं इस समय अकेली हू।'

'तो ठीक है, मै चला जाता हू। फिर कभी आऊगा।

मैं चला आया था। हसता हुआ। वही पागला वाली हमी।

ऐसे हसने वाले आदमी को कौन अपने घर म घुसन देगा और यह सच है कि उससे भी अब फोन पर ही बातें होती है। अच्छी अच्छी अलग अलग विषया पर।

सोचता हू, टेलीफ़ोन बूथ कितनी अच्छी जगह है। कितनी सुरक्षित। उसम किसी भी हाल मे खडे होकर किसी से भी कसी भी बातें कर सकता हू। सिर्फ एक शर्त है कि बूथ मे

छत नीचे आ रही थी कि एक हाथ आकर मेरी छाती पर पडा। रुक गई। मेरे कमरे म खिडकी के शीशो मे से बाहर क खम्भे की रोशनी आती है। मैंने छाती पर पडे हाथ को अपने हाथ म उठाया और पहचानने की कोशिश की। बदन न दीखे तो हाथ पहचानना मुश्किल होना ह। यह किसका हाथ हो सकता है। मैंने हाथ उठाया और एक तरफ रख दिया। सुबह देखूगा। किसी का हाथ देखकर ही छूना चाहिए। या हो, कोइ बुरा मान जाए। एक पल बाद मैंने पाया कि हाथ गायब है। लगता है हाथ बुरा मान गया

सडक खुल रही है। अब मैं चल नही रहा लुढक रहा हू। घर और टेली-फोन-बूथ बहुत पीछे रह गए हैं। न कही रूप है, न रस, न गन्ध, बस एक गति है जो चारो तरफ़ के दृश्य को तेज़ी से बदल रही है। चारो तरफ हाथ ही हाथ हैं चारो तरफ पर ही पैर हैं। मैं उन्हे पकडने की कोशिश कर रहा हू। पर हर पकड हवा मे तर जाती है और मेरी मुट्ठी खुली की खुली रह जाती है खुली मुट्ठी से कोई क्या पकड सकता है और खाली हाथ, खुलती सडक पर मैं लुढकता जा रहा हू अब रोता नही हू लुढ-कन का ही चलना मानने लगा हू, और चलना रोने से ज्यादा क़ीमती होता है

छत और नीचे न आती तो मैं लुढकता ही चला जाता। घर के फ़र्श और घर की छत के बीच मैं ऐसे फस गया जसे कटने से पहले कटिंग मशीन मे कागज़ का रीम पर चलो, लुढकना तो बन्द हुआ और अब लग रहा है रोना चलने लुढ़कने से कही ज्यादा फायदेमन्द होता है, इसलिए मैं

सुबह हो रही है।

पहाडी की तलहटी म खडा मैं सूरज के निकलन का अनुभव कर रहा हू। पहली किरणो के खिंचते ही सारी पहाडी, अबरक का दाना-दाना गुलाबी हो उठेगा। नीचे से गुलाबी रग की धार का मज़ा कोई कसे ले सकता है। पर भागकर भी पहाडी पर चढा, तो भी जब तक ऊपर पहुचूगा अबरक क फूल अमूत्त हो जाएगे सफेद सतरगी पर अमूत्त। सिफ गुलाबी रग मूर्त्त होता है, और इस समय

क्ल टेलीफोन-बूथ मे कोई था कोई नही था या शायद मेरा ही भ्रम गर्मी के कारण पिघलकर बूथ तक फल जाता था जो भी हो शाम को छला न जाता तो रात भर इतनी गहमागहमी न रहती। मैं चारपाई पर ही उठकर बठ गया हू तलहटी से लौट आया हू आस-पास न गुलाब के फूल हैं न गेंदे के न अबरक के फ़ोन करन निकलू तो कास के फूलो की कतार खडी दीखेगी

पत्नी ने कहा, "चाय।"

मैंने चाय ले ली है। पीने लगा हूं।

पी ली है तो धीरे से कहा है, 'एक अठन्नी ता दो जरा।"

'अठन्नी ?'

"हां।'

"काहे के लिए ?"

"एक फोन करना है।'

पत्नी ने रूखी विनय से कहा है, "एक अठन्नी ही है। तुम्हें जाना भी होगा। देख लो और जाकर शाम का जल्दी आना।"

मैं यों ही बाहर निकल आया हूं। चाय पीकर। पान की दुकान खुल रही है और उससे कुछ दूर खड़े कास के फूल कतार में हंस रहे हैं गर्दन हिला हिलाकर।

मैं धीरे-धीरे चलकर टेलीफोन बूथ तक गया हूं। खाली आंखों से मैंने खाली बूथ को देखा है और धीरे धीरे चलकर वापिस चला आया हूं।

अनागत का भविष्य

आधी रात निकल चुकी है। रेल तेज चाल से चली जा रही है। लक्सर का स्टेशन आने वाला है। यहा काफी देर गाडी रुकेगी। फस्ट क्लास के डिब्बे म एक बथ पर सिल्क की चादर ओढे छाया लेटी है। उसकी बथ पर की रोशनी बुझी है। पास ही शलेन्द्र बठा कोई किताब पढ रहा है। रोशनी की कमी मे किताब उसने बिलकुल आखो से लगा रखी है। पता नहीं वह पढ भी रहा है या नही। पर काफी देर से वह कुछ बोला नही है न ही किताब पर से नजर हटाई है। छाया जाग रही है, इस बात का उसे पता है।

पूरे डिब्बे म उन दोनो के सिवाय कोई नही है।

रेल बहुत तेज चाल से बढी चली जा रही है। काफी देर उसे चलते हो गए है। हवा म हल्की सर्दी महसूस हो रही है। कुछ देर पहले शलेन्द्र ने आसपास की सब खिडकियो को बन्द करना चाहा था, पर छाया न मना कर दिया। उसे नीद नही आ रही है रोशनी बुरी लग रही है। वह नही चाहती कि शलेन्द्र इस समय पढे। उसकी इच्छा थी कि कुछ बातचीत हो जाए। शलेन्द्र बातें नही कर पा रहा है। इसीलिए वह चुपचाप बत्ती बुझाकर लेट गई है। लेटकर वह एक खास तरह का आनन्द ले रही है। शलेन्द्र के किताब म दुबके चेहरे को देखकर उसे मजा आ रहा है। बोलना लेकिन वह भी नही चाहती।

छाया के ऊपर की खिडकी खुली है। वह उठकर बैठ गई। अपनी पूरी बाह खिडकी मे फसा ली और अपना सिर बाह पर टिका लिया। छाया के काले लम्बे बाल एकदम खुले है। धोती के पल्लू मे सिमटे बाल पूरी तरह उड नही पा रहे है। हवा मे ठण्ड की कुनक बढ रही है। छाया ने सिल्कन चादर बदन पर से उतारकर परो पर रोक ली है। वह एकटक बाहर फैले अधेरे को देख रही है।

'कितना अधेरा है।'

शलेन्द्र ने किताब रख दी। कुछ देर वह चुपचाप छाया को देखता रहा। फिर बत्ती बुझाकर अपनी बर्थ पर लेट गया। उसके पास ओढने को कोई भी चादर नही रखी है।

'कितना अधेरा है" छाया फिर कह रही है।

खिडकी मे टिकी बाह पर थमा उसका सिर जरा ढीला हो गया है। वह बाहर अधेरे मे देख रही है। कही जरा रोशनी नही है। बाहर जरूर पेड, पौधे, मकान, जानवर होगे। कुछ नही दीख रहा है। रेल के भरकम पहियो की आवाज अधेरे को और गाढा कर रही है। हवा मे ठिठुरन और बढ गई है। छाया को रह रहकर धुरधुरी आ रही है, पर बाहर देखना बन्द नही किया है।

शलेन्द्र पास आकर खडा हो गया।

'सर्दी लग जाएगी, खिडकी बन्द कर लो।'

'अच्छा। तुम भी सो जाओ।"

खिडकी बन्द कर छाया लेट गई। अन्दर डिब्बे मे भी अधेरा है। सिर्फ एक छोटी बत्ती जल रही है। छाया ने आखें मूद ली। चादर ऊपर तक खिसका ली। रेल के पहियो की आवाज सुनाई दे रही है। हवा के रुख के हिसाब से आवाज कभी तेज हो जाती है, कभी बिलकुल मन्दी। छाया को एहसास है कि शलेन्द्र पास ही लेटा है। वह चुप है एकदम चुप।

छाया और शलेन्द्र देहरादून जा रहे है। वहा दो-तीन महीने रहेगे। छाया गर्भवती है। आठवा महीना है। एक डेढ महीने मे वह निपट जाएगी। एक डेढ महीना सेहत पाने मे लगेगा। फिर दोनो अपने अपने घर चले जाएगे। छाया और शलेन्द्र दोनो दोस्त हैं।

रात का रेल का चलना बहुत अच्छा लगता है। वह वक्त की लम्बी डोरी को कट्-कट् खट् खट् काटते हुए रेल के पहिये मन में न जाने क्या क्या जगा रहे हैं। छाया शायद सो गई है। पर रह रहकर वह करवट ले रही है उसे शायद गर्मी महसूस हो रही है। शलेन्द्र भी सोया है और करवटें ले रहा है। बाहर चारों तरफ गहरा अंधेरा है। उस अंधेरे में से यह डिब्बा कैसा लग रहा होगा। बिलकुल अंधेरा डिब्बा जिसमें सिर्फ एक छोटी-सी बत्ती जग रही है। जिसमें सिर्फ दो जन हैं। दोनों सोए हैं और करवटें ले रहे हैं। उन्हें गर्मी लग रही है और बाहर हवा की चिल खूब बढ़ गई है। तेज ठण्डी हवा और उसपर गीदड़ों की आवाजें तैरती हुई। गीदड़ रो रहे हैं। रेल उस आवाज को चीरती हुई बढ़ती जा रही है।

लक्सर आया गाड़ी ने अपनी दिशा बदली और फिर चल दी। छाया और शलेन्द्र दोनों पड़े सोते रहे और करवटें बदलते रहे।

देहरादून में छाया ने जो मकान किराये पर लिया है वह शहर से काफी दूर है। चारों तरफ घना जंगल है। कोई फर्लांग की दूरी पर एक और कोठी है। उस कोठी की रोशनी तक यहां से दिखाई नहीं देती। मकान के चारों तरफ मजबूत चहारदीवारी है। एक नौकर है। एक कुत्ता है। छाया खाना खुद नहीं बनाती नौकर बनाता है। शलेन्द्र को इस सबसे बड़ा संकोच होता है पर छाया हंसकर टाल देती है। छाया को पैसे की कोई चिन्ता नहीं है।

शलेन्द्र ज्यादातर चुप रहता है। लम्बा, चौड़ा और खूबसूरत शलेन्द्र चुप बैठा बहुत अच्छा लगता है। वह हर तरह की कुर्सी पर एक ही तरह से बैठता है और चुप होता है तो उसके होंठ बड़ी नरमी से जुड़े रहते हैं। जो हो चुका है उसको लेकर वह छाया की तरह निश्चिंत नहीं है। उसमें बहुत संकोच है। विशेष तौर से इस तरह छाया के साथ आने पर। छाया उसे देखकर हंसती रहती है। 'अरे तो क्या हुआ? तुम तो ऐसे हो रहे हो जैसे जाने क्या हो गया! महीने दो महीने में सब ठीक हो जाएगा। फिर हम-तुम उसी तरह बोल खेल सकेंगे। आदमी के कपड़े क्या मैले नहीं

होते। वह धोती है और फिर पहन लेता है। तुम्हारी तरह हीनता से मर थोड़े ही जाता है कोई।"

शलेन्द्र बड़े कमरे की खिड़की पर खड़ा चुपचाप यह सब सुनता रहता है। सुनकर वह बाहर देखने लगता है। बाहर शाम होती है। आसमान में धूल ही धूल छाई है। एकदम किरकिरी रूखी धूल। लाल लाल। बादल हो तो मन नम हो। पर यह धूल तो जैसे शरीर के भीतर बाहर की सब नमी सुखा देती है। खिड़की के नीचे गहरी खाई है। सामने मसूरी के पहाड़ है। मसूरी में रोशनी होने लगी है। धूल में से रोशनी कैसी लग रही है। नीचे की खाई में बहुत गहरे जाकर एक छोटा सा झरना है। उस पर एक धोबी और एक धोबन अब भी कपड़े धो रहे हैं। धूल उन्हें शायद परेशान नहीं कर रही। नीचे से ऊपर आती पगडण्डी पर से कुई बकरियां भागी आ रही हैं।

सूरज डूब रहा है।

शलेन्द्र खिड़की पर से हट आया है। कमरे में बिछे कीमती सोफासेट पर आकर बैठ गया है। छाया बाहर कारीडोर में बिछी एक ईज़ी चेयर में बैठी है। वह एकदम स्वस्थ है। धीरे धीरे गुनगुना रही है। अपने ठीक सामने के लान पर उसकी दृष्टि है। लान में कुत्ता भाग भागकर किलोल कर रहा है। नौकर खाना बना रहा है। कोठी के दरवाज़े पर न जाने कौन बैठा सुस्ता रहा है। जाने कौन है।

शलेन्द्र बहुत देर चुप बैठा रहा है। वह उतावला-सा दीखता है। उठकर बाहर छाया के पास आ गया है। कुछ देर उसकी कुर्सी के पीछे खड़ा उसके कुर्सी में धसे शरीर को देखता रहता है। फिर एकदम उसके बालों में उंगलियां डालकर कहता है, 'चलो छाया, अन्दर चलो।'

'क्यों ?"

'बाहर सर्दी बढ़ेगी।"

'मुझे अच्छा लग रहा है। अभी बढ़ी नहीं है।

ज़िद बहुत करती हो।"

'कहां ज़िद करती हूं। मैं तो कभी ज़िद नहीं करती। मुझे ज़िद करना अच्छा ही नहीं लगता। पर अब तो "

छाया जोर-जोर से हसने लगी है। कुत्ता अब खेल नहीं रहा। चुप चाप एक किनारे खडा हो गया है। अंधेरा एकदम घुट आया है। हवा में तेजी आ गई है। ठण्ड भी है। आसमान म अब धूल नही है। सामने मसूरी के सब चिराग जल गए है। सपनो के लोक की तरह दीखती मसूरी का देखना छोड दोनो अ दर कमरे मे आ गए है।

'छाया तुम्हे डर नही लगता ?'

'तुमसे ? लगता है। उहू, नही लगता।

कमरे की तमाम खिडकिया खुली है। छाया एक एक करके सब बन्द कर देती है। 'लो, अब तो ठण्ड नही लगेगी ना। कितनी चिन्ता करते हो तुम मेरी। सुनो शलेन्द्र! चलो यहा से कही और चलें। यह जगह ठीक अच्छी नही है। तुम्हारा यहा शायद मन नही लगा। है ना ?'

शलेन्द्र सिर्फ छाया की तरफ देख रहा है।

आज तुम्हारा किसी चीज में मन नही है ?

शलेन्द्र चुप है।

'मैं कुछ बुरी लगने लगी हू।'

शलेन्द्र उठता है और दोनो हथेलिया म छाया का मुह दबा लेता है। कहता है, 'तुम बहुत क्रूएल हो छाया! खाना आए तो मुझे बुला लेना।

कहकर वह अपने कमरे म अपने पलग पर जाकर लेट गया है।

छाया बहुत खूबसूरत लडकी है। कालिज म वह अकेली लडकी थी जो प्रोफेसरो से लेकर लडको तक समान रूप से चर्चित रहती। उसकी बनियाजी पर लोगो को आश्चर्य होता रहा है। उसकी चिकनी सफेद मखमली खाल पर वक्त की कोई बूद रुक नही सकी। उसने किसी को गिनती में नही लिया। वह सबकी तरफ मुग्ध दृष्टि से देखती और भूल जाती। उचटती नजरो से देखती तो भी भूल जाती। बातें करती तो कही दुविधा न होती। चलती फिरती तो स्वच्छन्द भाव से। पढ़ती तो जमकर और हमेशा ऊपर की पाच-सात लडकिया म से एक रही।

ालेन्द्र हमेशा टॉप करता था।

छाया शलेन्द्र म अटक गई। पर निद्वन्द्व वह तब भी रही। कोई यह सोच भी नही पाया कि वह शैलेन्द्र से प्यार करने लगी है। उससे कोई पूछता तो वह झूठ नही बोलती। कहती, हा, वह मुझे अच्छा लगता है।" पर कार पर एक सकिण्ड उसका इन्तजार नही कर सकती थी। वह कहता, म तो जरा ' और कार खिसककर आगे चल देती। दोनो घूमने जाते, पिक्चर जाते, शापिंग करते और यो ही घूमते। पर छाया ने किसी दिन शलेन्द्र की घरेलू स्थिति जाननी नही चाही। वह कहता मेरे पास तो सुविधा नही है कि वहा चलू। वह कहती, "मेरे पास है चलो।" शलेन्द्र चल पडता। छाया ने कभी अपने अमीर होने का भार शलेन्द्र पर नही डाला। उसका तमाम सकोच भाव वह ऐसे हस हसकर उडा देती कि आश्चर्य होता और कभी कभी तो शलेन्द्र स्वय चकित रह जाता। छाया के सामने उसके जन्मजात गुण न जाने कहा चले जाते थे।

एक दिन छाया ने सूचना दी 'अरे कमाल हो गया! मैंने अपने डाक्टर को दिखाया था। वह कहता है—यू हैव कसीव्ड।'

शलेन्द्र छाया के कहने के ढग म अटककर रह गया था। वह खबर पर स्तम्भित हो ही नही पाया था। कहने का ढग इतना सहज था।

छाया आकर कुर्सी पर बठ जाती है। हल्की-हल्की बूदें गिरने लगी हैं। छाया को अच्छा लग रहा है। हवा मे सर्दी आ गई है। अभी घण्टा भर पहले काफी उमस थी। उमस से घबराकर ही शलेन्द्र शायद कही बाहर निकल गया है। जाने कहा चला गया। तेज बारिश आने वाली है। भीग जाएगा।

छाया चिन्तित होते होते हस पडती है। सोचती है पत्नी की तरह चिन्ता करने लगी हू। पर यह क्या उसका साथ निभा पाएगा। डरता है। मैं जो इतनी साफ-सुथरी हू—उससे डरता है।

बारिश तेज आ गई है। छाया अन्दर चली गई है।

छाया का मन आज अनमना है।

वह खिडकी के पास आकर खडी हो जाती है। नीचे वही गहरी खाई। ऊपर से तेज बारिश की बूदें खाई म समा रही है। दूर-दूर तक कोई पक्षी

तक दिखाई नही देता । नीचे न धोबी है, न धोबिन । झरना ज़रा तेज़ होकर बह रहा है। कीकर, आक नीम और बबूल के पेडो के पत्ते पानी की बूदो क दबाव से भुके जा रहे हैं । खिडकी से होकर पानी की बूदें छाया पर पड रही ह । खिडकी उस बन्द कर लेनी चाहिए। पर वह बाहर देखे जा रही है। आसमान मे कुछ दिखाई नही दे रहा। सामने भी खूब ध्यान देने स ही कुछ दिखाई देता है। पर खूब ध्यान देने से उसे कुछ दिखाई दिया है और वह एकदम चौक उठी है। वह वहा क्यो गया ? इतन गहरे म ? खाई की तलहटी म क्या करन गया था ? 'एडवेन्चर' इसम क्या है ? मेरे से अलग उसके लिए एडवेन्चर' के तौर पर कुछ भी क्यो हो ? तो क्या मुझसे इतना डरने लगा है ? डरने लगा है तो उसे घर चला जाना चाहिए। इस तरह साथ रहना कसे होगा ? मैं तो उससे नही डरती, किसीसे नहीं डरती । यह जो है सो निपट जाए तो उससे कहूगी कि घर जाए आराम करे। मेरे लिए चिन्ता की ज़रूरत नही है।

कुछ मिनटो को छाया उदास दीखी पर तत्काल ही उसने अपनी सब उदासी झटककर फेंक दी और स्वस्थ होकर कमरे मे घूमने लगी। नौकर को आवाज़ दी और काफी बनाने को कहा। कहा कि काफी गम रखे और उसका किसी समय भी ज़रूरत पड सकती है।

वह फिर आकर खिडकी के पास खडी हो गई। बारिश अब ढीली पड गई ह । शैलेन्द्र पड के नीचे स निकल आया है और सभल-सभलकर ऊपर चढ रहा है। उसकी कमीज़ और पेट उसके ऊचे सुडौल बदन से चिपट गई है। छाया ने दोनो कुहनियो को खिडकी म फसा लिया है फिर दोनो हथेलियो म अपना हलका पीला चेहरा टिकाकर वह शलेन्द्र का सभल-सभलकर ऊपर चढना देख रही है। बारिश अब बिलकुल रुक गई है। पगडण्डी पर ज़रूर फिसलन होगी तभी शलेन्द्र इतना रुक रुककर चढ रहा है।

छाया भीतर आकर फिर कुर्सी पर बठ गई है। उसने सामने रखी कुर्सी पर अपनी टागें पसार ली हैं और गदन पीछे टिका ली है। शलेन्द्र की इन्तज़ार कर रही है। नौकर को बुलाकर उसन एक बार फिर पूछ लिया है कि काफी तयार है या नही। शलेन्द्र आ ही रहा होगा।

शलेन्द्र आ रहा है। उसने डरते-डरते मेनगेट खोला है। वह एकदम भीगा है। कोठी की सपाट सडक पर भी वह ऐसे ही चल रहा है जसे पगडण्डी पर चढ रहा हो। छाया की आखो में एक काली छाया तर गई है। वह चुप होकर बैठ गई है।

शलेन्द्र कमरे के दरवाजे पर दीखा है।

छाया ने जोर से आवाज दी है, "कपडे बदल लो, कॉफी तयार है।"

शलेन्द्र के लिए यह अप्रत्याशित था।

छाया तो कभी किसी की चिता नही करती।

कॉफी पर शलेन्द्र बताता रहा कि वह कहा गया था और छाया चुपचाप बठी सुनती रही। शुरू से आखीर तक कुछ नही बोली।

'तुम सुन नही रही ?"

"क्या, सुन तो रही हू।"

"कोई 'रिएक्शन' नहा ?"

छाया सिफ मुस्करा दी। कॉफी 'सिप' करती रही।

वह कोठी जिसमें छाया और शलेन्द्र रह रहे हैं काफी बडी है। मसूरी के रास्ते पर शहर से कोई दो मील दूर सडक की दायी तरफ वह खडी है। सडक छोडकर कोई आधा फर्लांग पथरीली ऊबड-खाबड पगडण्डी पर चलना पडता है। तब कोठी का बाहर का लकडी से बना गेट आता है। कोठी के चारो तरफ जगल हैं। कीकर की गहरी झाडिया। उन झाडिया में कोठी बिलकुल छिप जाती है। लॉन में कुर्सी पर बठी छाया को उन सब झाडियो को चीरकर सडक पर से गुजरती ट्रक, बस, कार साइकिल और आदमी की एक फटी-सी शक्ल दिखाई देती है। वह कभी-कभी उसे देखती रहती है। देखकर खूब खुश होती है। वह देखकर नहीं पहचान पाती कि सडक पर क्या जा रहा है तो ध्यान से आवाज सुनने की कोशिश करती है। इसी तरह आवाजो की अब उसे खूब पहचान हो गई है। पहले वह पहचान लेती है। फिर ध्यान से सडक की तरफ देखती है। लॉन मे वह कभी कही बठती है, कभी कही बैठती है। इसीलिए आदमी का कभी उसे

सिर चलता हुआ दीखता है, कभी खाली टाँगें। मोटर का पहिया अकेला सडक पर भाग रहा है और साइकिल तो है पर ऊपर कोई नही है। वह शलेन्द्र को बुलाती और यह सब दिखाती। शलेन्द्र अनमना हो उठता। कुत्ते के साथ खेलने लगता।

"तुम्हे यह सब अच्छा नही लगता ?"

"नही।'

"क्या ?"

"चीजें पूरी अच्छी लगती हैं।"

अरे वाह, जो दीखता है सो दीखता है। झाडियो के पीछे का हम अन्दाज़ा क्यो करें ? अच्छा छोडो। चलो, उधर चलकर खडे होंगे। छत पर से चारो तरफ देखेंगे। वह तो ठीक है ना ? शलेन्द्र तुम उदास रहते हो। तुम्हे शायद यहा अच्छा नही लगता। तुम चाहो तो वापस घर चले जाओ। मैं निपटकर आ जाऊगी।"

'चलो, ऊपर चलें।'

"वापस नही जाओगे ?"

'मुझे मालूम है तुम बहुत निडर हो। तभी तो मुझे डर लगता है।"

छाया ने एकदम ठण्डी आवाज़ मे कहा, "डरना नही चाहिए शलेन्द्र! जाने कैसा महसूस होता है ! चलो।"

दोनो चल दिए। शलेन्द्र ने छाया का हाथ पकड लिया। हाथ कुछ रोज से अधिक ठण्डा था। वह बोला तो कुछ नही हाथ को धीरे धीरे मसलने लगा। शलेन्द्र की मुट्ठी म छाया का पूरा हाथ आ जाता है। उसने उसे दबोच लिया है। जान पार हो गया है। कोठी का कारीडोर पार करके दोनो सीढियो की तरफ जा रहे हैं। कोई पन्द्रह बीस गोल सीढिया। दोनो धीरे धीरे चल रहे हैं। चुपचाप। चुप्पी वक्त पर बोझ डाल रही है। शाम का वक्त है। सूरज डूब चुका है। धरती बचे खुचे उजाले को उफक-उफककर पकडने की चेष्टा कर रही है। पर हाथ उसके अधेरा ही आता है। वह शात हो जाती है। अधेरा बढ रहा है। वक्त की डोर खिच रही है। छाया और शलेन्द्र सीढियो पर चढ रहे हैं। शलेन्द्र ने छाया का हाथ पकड रखा है।

"तुम्हारा हाथ बहुत छोटा है छाया।"

"शलेन्द्र तुम्हें पछतावा हो रहा है।"

"नही तो।"

"अच्छा।"

छत की हवा में हल्की ठण्ड है। अगस्त का महीना है। वारिशें हो रही हैं। दिन मे धूप निकलती है तो गर्मी महसूस होती है। कभी कभी बहुत तेज भी होती है। दम घोट देने वाली। बादल आते हैं तो हल्की ठण्ड महसूस होने लगती है। शाम के वक्त हल्की ठण्ड होती है। इस समय भी ठण्ड है। आसमान में बादलों के छोटे-छोटे टुकडे हैं। छत पर चारो तरफ का सब दीखता है। दूर तक फला हुआ देहरादून। चारो तरफ पहाड। देहरादून मे सूरज के डूबने से अधेरा नही होता। पहाडो की छाया से अधेरा होता है। सूरज तो बहुत देर बाद डूबता है। डूबते हुए उसकी किरणें पहाडो की चोटियो को और आसमान को रोशन किए रखती हैं। तमाम शहर अधेरे में डूब जाता है।

कोठी के पीछे की खाई मे बिलकुल अधेरा छा गया है। धोबी और धोबिन पगडडी से ऊपर चढ रहे हैं।

"उस दिन मैं वहा तक गया था।"

शलेन्द्र ने छाया को अपने से सटा लिया है। उसका हाथ कसकर पकड लिया है।

छाया खडी है। चुपचाप सामने देख रही है। उसने साडी पहन रखी है। अधेरे मे उसका चेहरा कुछ अधिक पीला लग रहा है। उसकी साडी रेशमी है। खिसककर नीचे गिर रही है। उसके पेट का उभार बडा स्पष्ट होकर दीख रहा है।

सामने मसूरी म रोशनिया जल रही हैं।

चारो तरफ का अधेरा गहरा हो गया है।

"छाया।"

छाया चुप है।

"छाया, बच्चे का क्या करोगी ?"

छाया अब भी चुप है और पूववत् खडी है। वह सामने ही देख रही

है। सूरज भी डूब चुका है। अँधेरे ने सबको एकदक एकाएम कर दिया है। नौकर ने नीचे कोठी की बत्तिया जला दी हैं। मसूरी खूबसूरत लगने लगी है। पहाड पर बसी है मसूरी। पर पहाड अँधेरे मे छिप गया है। मसूरी की तमाम बत्तिया जगमगा उठी हैं। आसमान मे टका एक परी-लोक।

शलेन्द्र के हाथ की पकड ढीली हो गई है।
दोनो के बीच मे जरा सी दूरी आ गई है।
"छाया, हम दोनो कुछ अपरिचित से होते जा रहे हैं। पहले '
"छोडो, चलो नीचे चलें।"
रात के जानवरो ने सुर बाधकर पहली आवाज दी है।

दोनो ने काफी ली और आमने सामने कोच पर बठ गए। शलेन्द्र ने एक सिल्कन कमीज और समर का नीले रग की पट पहन रखी है। छाया जामुनी रग की साडी मे लिपटी है। दोनो के बीच में एक गोल मेज है जिस पर पानी के दो गिलास आधे खाली रखे हैं। नौकर काफ़ी के बतन ले गया है और किसी काम में लग गया है। पर गिलास रखे हुए अच्छे लग रहे हैं। शलेन्द्र 'फमिना' देख रहा है और छाया के हाथ में कोई भारी-सा नॉवल है। कोठी में उस कमरे के सिवाय चारो तरफ अँधेरा है। रसोई में खाना बनन की आवाजें इस कमरे में नही आ रही। बाहर स तेज हवा, किसी जगली जानवर या पेड की डालियो के आपस में टकराने की आवाजें ला रही है। खाई की तरफ की खिडकी खुली है।

यह खिडकी बन्द कर दें।"
हा ठीक है।"

दोनो में स उठकर खिडकी बन्द करने कोई नही जाता। नौकर आता है। गिलास उठाकर चला जाता है। खिडकी बन्द करने का उससे भी जिक्र नही आता। खिडकी से तेज ठण्डी हवा भीतर आ रही है।

'ठण्ड कुछ बढ़ती जा रही है।'
'रहने दो।'

"हा।"

शलेन्द्र ने फेमिना रख दिया है। छाया नॉवल मे बहुत तल्लीन हो गई है। उसने टागें जरा फैला ली है। शलेन्द्र की कुर्सी से पैर छू रहे हैं। लम्बा खिचने से टागें घुटने से जरा नीचे तक नगी हो गई हैं। शैलेन्द्र की टागें उन टागो के ऊपर से होकर जमीन पर टिकी है। छाया का रग कितना गोरा है।

"तुम्हे इस तरह फैलकर बठने में तकलीफ नही होती ?"

'नही तो।"

शैलेन्द्र हस पडता है, 'कितनी भारी हो गई हो! पहले इसी तरह टागें फलाकर बठती थी तब भी धोती पैरो तक पहुचती थी।"

छाया नजर उठाकर शलेन्द्र की तरफ देखती है।

"नही ?"

'ठीक तो है, पर क्या करू ?"

रात के शायद नौ या दस बज गए हैं। शायद इससे भी ज्यादा हो। बाहर ग्रधेरा बहुत गहरा हो गया है। छाया बाहर देख रही है। खिडकी में से सारा अधेरा एक प्रोजेक्शन मे कटा हुग्रा दीख रहा है। वह ऊपर से गिर रहा है। खिडकी से ऊपर कुछ दिखाई नही देता। खिडकी से नीचे देखना भी मुश्किल है। ग्रधेरा गिर ऊपर से ही रहा है। है भी बहुत। कितना ग्रधेरा है।

"खिडकी बन्द कर दो ना ?"

"एकदम पिनड्रॉप साइलेन्स' ग्रच्छी नही लगती।"

'हा, लगती तो नही। रहने दो।"

छाया कहकर चुप हो रही। कुछ देर बाद फिर बोली, "तुम्हारा नाम बहुत खूबसूरत है शैलेन्द्र। सॉरी, शैलेन। जी करता है तुम्हे शल कहा करू। बुरा तो नही मानोगे ?"

'यह तो लडकिया का नाम है ?"

छाया हस पडी। बोली, "छोडो, यह भी कोई बात हुई! बात ग्रच्छा लगने की थी। खाना नही ग्राया ? बाहर तो शायद बादल घिर ग्राए हैं। ग्रधेरे म भी दिखाई देते हैं। बादल कुछ ग्रधेरे से कम काले होते हैं।

तुम्हारी सेहत शैल कुछ गिर नहीं गई है ? लो, खाना आ गया।"

छाया ने खुद उठकर खाना लगा दिया। खिड़की बन्द कर आई। नौकर को घण्टी देकर बुला लिया। "यहीं बैठो, किसी चीज़ की जरूरत पड़े। यहीं बैठना चाहिए। आज मोहन, कोई डाक नहीं आई ? मोहन खाना बहुत अच्छा बनाता है। शैल, कुछ चाहिए ? मोहन को छुट्टी दे दें। आज तुम लेट, यहीं सोना, इसी कमरे में।"

'अच्छा।"

न जाने कै बजे हैं कि छाया बिस्तरे में से निकलकर ऊपर छत पर आ गई है। शैलेन्द्र पास ही बिस्तरे पर सो रहा था। गहरी नींद में या शायद गहरे सपनों में। उसके दायें पर का अंगूठा बिस्तर से निकलकर छाया के पलंग को छू रहा था। पर छाया ने कुछ देखा नहीं है और अकेली छत पर आकर खड़ी हो गयी है। आसमान साफ है। बादल शायद निकलकर जा चुके हैं। दूर दूर तक अंधेरा है। अंधेरे में भी पहाड़ियों की छायाएं साफ दिखाई दे रही हैं। क्यों इतना अंधेरा नहीं होता कि दूर का पास का कुछ भी दिखाई न दे। यह मटमैलापन बुरा लगता है। कई चीजें जिन्हें दीखना नहीं चाहिए दीखती हैं और रूप बदल-बदलकर दीखती हैं। रूप बदलता हुआ आदमी भयावना होता है। यह मिलावट न हो तो कोई क्या रूप बदले। पर शायद वह अनिवार्य है। यों ही कभी कोई चीज कैसी, कभी कैसी और सब गड़मड़।

छाया ने अपनी रेशमी साड़ी को पेट पर जरा खिसका लिया। नीचे के पेटीकोट का नाड़ा जरा ढीला किया और अपने बढ़े पेट पर हाथ फेर कर उसे महसूस करने लगी। कितना बढ़ गया है। कितनी अजीब शक्ल है। यह जब खाली हो जायगा तो इस खाल में बारीक बारीक सिलवटें पड़ जाएंगी। उन सिलवटों से भय लगने लगेगा। पेट फिर तनेगा फिर खाली होगा। फिर सिलवटें लम्बी-लम्बी धारियां बन जाएंगी और फिर एक दिन पेट तनना भी बन्द हो जाएगा। और ये धारियां सारे शरीर में फैल जाएंगी। तो कैसी लगेंगी ? कैसी क्या लगेंगी ? आनन्द रहेगा। एक झुर्रियों वाला बदन पलंग पर लेटा होगा। फिर भी कोई आएगा और पल

को उनको टालकर उसमें यौवन भर देगा। उसे छाती से लगा लेगा।

वह कौन होगा ?

शलेन्द्र ?

नहीं। वह तो अभी से मेरे शरीर से डरता है। वह तो डरता है। सबसे डरता है। वह निकम्मा है। नपुसक और किसे कहते हैं ? जो उसका है उसे ही स्वीकृति नहीं दे पाता। पहले तुम कसी थी, इसी तरह वठती थी तो भी तुम्हारी टागें नहीं उघडती थी। उसका बस चले तो उघडी टागो को गडासे तराश कर फेंक दे। अगली दफा थोडी और, और अगली दफा थोडी और। फिर सिफ जाघें रह जाएगी और फूला पेट और दूध पिलाने को ये दो लम्बी मछलिया, लटकी हुई, थुल-थुल, और हड्डिया वाला मुह। कोई चूमे तो लगे कुत्ता हडडी चूस रहा है। नहीं, शलेन्द्र से नहीं चल सकेगा। मैं मरन तक पहुचने के लिए खुल कर जीना चाहती हू। हर समय जीने की लालसा में पल-छिन मृत्यु-सुख का उपभोग करना नहीं।

छाया छत की मुडेर के पास आ गई है। नीचे की खाई में देख रही है। सामने का विस्तार देख रही है। अधेरे में उभरी पेड-पौधो और पहाडो की गहरी काली छायाओ को देख रही है। कीकर की झाडियो की ओट में बनी मोहन की झोपडी में अब तक चिराग जल रहा है। मसूरी उतनी ही खूबसूरत लग रही है। आसमान मे बादल नहीं हैं पर तारे भी नहीं हैं। लगता है कि सब तारे मसूरी म इकट्ठे हो गये हैं। यह मोहन की झोपडी में चिराग कसे जल रहा है। मोहन शादीशुदा है ? या कोई आया है ? रगीन तो लगता है। जाने कोई कितनी दूर से आया होगा। क्या मौसम है, क्या अधेरा है, और क्या जगल है ! फिर भी चिराग जल रहा है। आने वाले को जरा डर नहीं लगा। जरा डर

छाया का हाथ मुडेर पर रखे एक पत्थर पर छू गया है। उसने उसे हाथ में उठा लिया है और धीरे-से नीचे छोड दिया है। पत्थर खाई में लुढकता जा रहा है। जाने किस किस चीज से टकराता, तेजी से, अनाश्वस्त भाव से, और अधेरे के भार से दबी छाया खडी हुई उस पत्थर के सफर को महसूस कर रही है।

'ओहो, कही कोई उस पगडण्डी से ऊपर न चढ़ रहा हो, वह धोबी धोबिन या कोइ बकरी या शलेन्।"

"मैं ऊपर आई हू और वह कही नीचे उतर गया हो।"

आशका के बावजूद छाया धीरे धीरे नीचे उतर रही है। दबे पाव कमरे मे आई है। चुपके से अपने बिस्तरे मे खिसक गई है। शलेन्द्र सा रहा है। उसका दायें पैर का अगूठा अब भी छाया के बिस्तर पर पडा है।

छाया को अच्छा महसूस नही हो रहा।

अगले दिन सुबह उठकर छाया ने घूमने चलने की बात चलाई।

"कहा चलें ?'

'सहस्र धारा चलो, या चलो मसूरी ही चलें।'

शलेन्द्र पल भर चुप रहा। बोला, 'तुम्हे कष्ट नही होगा ?"

"नही तो।"

"डाक्टर कहता था, तुम्हे आराम करना चाहिए।"

"हा, कहता तो था। चलो रहने दो। यही खिडकी के किनारे बठेंगे। पूरी पिकनिक का मजा आता है। नीचे घाटी मे देखना बहुत अच्छा लगता है। शलेन्द्र, तुम्हे तो इस जगह बडा बोर लग रहा होगा ?"

'नही तो, बोर क्यो लगेगा ?"

"अकेला, सुनसान जगल।"

'अकेला कहा हू, तुम जो हो।"

'मैं तुम्हारा मन कहा बहला पाती हू।"

शलेन्द्र जाने क्या सोचता हुआ चुप हो रहा।

छाया कोच पर शलेन्द्र के पास आकर बठ गई। उसका हाथ अपने हाथ मे ले लिया। पल भर लिए रखा। फिर वही हाथ अपनी गोद में रख लिया और बाह के घने काले बालो को अपनी सफेद कोमल उगलियो से सहलाने लगी। सहलाती रही। फिर बोली, 'शहर अच्छा होता है। मोटर, टागे साइकिल पदल, ऊचे घरो और रेस्ट्राओ का शोर। आदमी अकेला महसूस करते ही भीड मे डूब सकता है। भीड उसे शान्ति नही

देती पर इस तरह सूने-सूने रहने से वह कम भयानक है। मैं तुम्हारे साथ रहते हुए भी साथ नही हू। हम दोनो के बीच म यह न जाने क्या आ गया। मैं सोचती रही, चलो क्या है, कोई बात भी तो हो, परेशान होन को, सब ठीक हो जाएगा। पर तुम परेशान हो। मुझसे परेशान हो। मैं अकेली तुम्हे भीड भी लग रही हू और तुम्हारा सूनापन भी दूर नही कर पा रही हू।"

शलेन्द्र छाया की तरफ देखता रहा और चुप बठा रहा।

'तुम वापस चले जाओ, शैल।"

"नही, वापस नही जाऊगा।"

तुम किस कदर दुखी हो।"

"हू, वापस नही जाऊगा।"

छाया ने हाथ छोड दिया। उठ खडी हुई और खिडकी के पास जाकर खडी हो गई। उसकी साडी की सलवटें बहुत गहरी दीख रही हैं। आदत के अनुसार उसने पीठ पर से साडी को झटका नही है। शैलेन्द्र उसकी पीठ पर देख रहा है। उसे वे सलवटो बहुत ऊब दे रही हैं। छाया का फूला पेट उसे दिखाई नही दे रहा पर इन सलवटो मे इतना फूहडपन है कि उसे मितली आ रही है। पर वह बैठा है और पूरे जोर से बठा रहना चाहता है। उठकर जाना उसे जैसे अपना अपमान लग रहा है। चुप रहना और भी घुटन दे रहा है।

"वहा क्यो खडी हो गई?"

छाया ने पीछे मुडकर देखा और हलके से मुस्करा दी।

शलेन्द्र को धुरधुरी सी उठी। सारा शरीर एकदम काटो से भर उठा। उसे लगा जसे अभी उसे उल्टी हो जाएगी। उसने मुस्कराते चेहरे पर से नजर हटा ली।

"हस क्यो रही हो?"

छाया जोर से खिलखिलाकर हस पडी।

शलेन्द्र के शरीर मे से रोमाच खत्म हो गया। वह धीरे से कोच पर से उठा और छाया के पास खिसक आया।

"डाक्टर कहती थी, अब खास देर नही।"

"अच्छा ही तो है।'

तुम्हारा इस तरह उछलना-कूदना ठीक नहीं है।"

'अच्छा जी, अच्छा।"

शलेन्द्र फिर छोटा होकर रह गया।

कई मिनट दोनों चुपचाप खड़े रहे। मोहन आकर इधर-उधर से कमरे को झाड़ने लगा। बाहर घाटी में खूब धूप फल गई। सारे पेड़ पौधे, पत्थर अभी तक भीगे हैं। धूप ने उन्हें उजला कर दिया। दोनों ने यह सब देखा। मोहन का निर्द्वन्द्व चेहरा देखा। अचानक छाया ने शलेन्द्र की बाह में बाह डाल ली और उसे घसीटकर कोच पर बैठा दिया। मोहन ने कहा, "मोहन आज नाश्ता जल्दी ले आओ।"

फिर शलेन्द्र से कहा, "पूछो।

"क्या ?"

'जो तुम पूछना चाहते हो।"

शलेन्द्र एकदम कुछ बोल नहीं सका। छाया भी चुप रही। मोहन नाश्ते का सामान लाकर रखने लगा।

कितनी ही देर बाद शलेन्द्र ने कहा, 'बच्चे का क्या करोगी ?'

"तुम बताओ, क्या करू ?"

"कुछ तो करना ही होगा।"

"हा।"

"यहा किसी आरफेनेज में दे देंगे।

"नहीं।"

'तो ?"

दोनों चुप रहे। मोहन कॉफी ले आया था। बनाकर उसने एक एक कप दोनों के सामने रख दिया और चला गया।

छाया ने कहा, "शलेन्द्र, तुम मानते हो कि हमसे गलती हुई है, इस लिए इतनी दुविधा में हो।'

'नहीं हुई।"

'ना।"

"तो बच्चे को पास रखें।"

"रखना चाहिए था, पर उस हालत मे तुम्हे भी पास रहना पड़ेगा। पर वह मैं नही चाहती। तुम मुझसे डरते हो, इसलिए उम्र भर डर डर-कर क्या जिम्रोगे। मैं चाहती हू शलेन्द्र कि बच्चे को एकदम नष्ट कर दो।"

शलेन्द्र सिहर उठा। उसने विह्वल भाव से छाया की तरफ देखा।

छाया ने कॉफी का एक सिप लेकर कहा, "कुमा-जगल मे छोड जाना, मारफेनेज, मुझे बडे 'क्रुएल', बडे 'इनह्यूमन' लगते हैं।"

'फिर ?"

"मेरा खयाल है, हम उसकी अन्त्येष्टि करें, जला दें।"

"छाया !"

छाया काफ़ी पीती रही और सोचती रही। फिर बोली, 'कुछ दुविधा, कोई डर बाकी नही बचेगा। नही तो आदमी जिन्दगी भर कुत्ते, बिल्लियो के मुह की हड्डियो को पहचानता फिरता है। यह कही उसकी' न हो। यह 'उसकी' न हो, यह "

शलेन्द्र के सारे शरीर मे आग सी लग उठी। वह एकदम चुप बठा रहा।

छाया ने घूट पर घूट करके कॉफी खत्म की। मुह मे नाश्ते मे से कुछ डाला। फिर मुह चलाते-चलाते बोली, "कितना अमानवीय है कि एक आदमी उम्र भर यही सोचता रहे कि मेरी मा कौन है, बाप कौन है तो ठीक रहा न शल ?"

शैलेन्द्र का शरीर कापने लगा।

'ऐसा करना, पहले मार देना, फिर सब गन्दे रद्दी कपडो मे रखकर जला देंगे।"

'ब्रूट, ऐनिमल।"

छाया खिलखिलाकर हस पडी। बोली, "तुम मुझसे डरत हो, तुम जानवर नही हो ?"

"तुमसे तो डरना ही चाहिए।"

"मैं अकेले यह सब नही कर सकूगी शल, तुम्हे कुछ दिन और ठहरना ही पडेगा। और कॉफी नही पिम्रोगे ?"

पर गलेन्द्र कॉफी नही पी सका। एक बिल्ली मुह म चूहा दबाए कूद-कर मज पर स निकलते हुए खून की कुछ बूदें कॉफी म टपका गई।

छाया पल को सहमी पर फिर हसन लगी, 'तुम जानवरा से बहुत डरत हो गलेन्द्र। क्या बात है ?'

गलेन्द्र चकित रह गया है। वह जानता है कि छाया जो भी कहती है वही करती है। इसीलिए उस बहुत डर है। वह छाया से और भी डरने लगा है। छाया कितनी खूबसूरत है। इन दिनो म उसन रह रहकर उसे बहुत पास से बहुत ध्यान से देखा है। वह उसे अधिक से अधिक खूबसूरत लगी है। अब छाया विशेष इधर-उधर घूमती नही है। या तो दिन भर पलग पर लटा कोई किताब, पत्र-पत्रिका पढ़ती रहती है। या फिर शाम को खुली छत पर हलके-हलके कदम धरती हुई घूमती रहती है। धोती का पल्लू कटि प्रदेश पर ही लपेट कसकर बाधकर और जम्फर का जरा ढीला छोड बाल खोलकर वह छत पर घूमती रहती है। परो म हल्की चप्पल। आवाज बिलकुल नही। पूरी बाहे असम्पृक्त, लटकी, भूलती हुई और अपनी अवस्था से पूणरूपेण निर्विकार। शलेन्द्र घूमने नीचे घाटी में या उधर पहाडा पर निकल जाता है। जाने कितनी कितनी रात तक लौटता है। माहन भी चला जाता है। उसकी झोपडी मे बाहर रोज एक चिराग जलता है। कभी-कभी सोते-सोत छाया उस चिराग को देखन आती है। देखती रहती है। बहुत-बहुत देर तक देखती रहती है। फिर नीचे उतर आती है, और पलग पर लेटकर सिरहाने की बत्ती जलाकर वह कोई किताब पढने लगती है। शलेन्द्र अब दूसरे कमरे म ही सोता है।

छाया न माहन से पूछा 'रात भर तुम्हारी झोपडी का चिराग जलता रहता है।

माहन ने छाया की तरफ देखा। हसकर बोला, आप !"

और चला गया।

छाया हलके-से सकुचित हो गई। मोहन दोनो को मानसिक स्थिति का समझता है। शलेन्द्र को घर चला जाना चाहिए। जाने क्यो वह अपने आपको यहा रोके है। उसे मुझसे सहानुभूति है। सहानुभूति क्या है ?

छाया ने मोहन को फिर बुलाया। कहा, "मोहन, अच्छा एक टक्सी तो बुला दो।"

"जी, अच्छा।'

"और सुनो, एक बात बताओ।"

"जी।"

'तुम हत्या कर सकते हो ?"

मोहन हस पडा।

"बोलो, कर सकते हो ?"

"किसकी ?"

'किसी की भी ?"

मोहन फिर हस पडा। बोला, "शलेन्द्र बाबू की ?"

पल भर के लिए छाया दमित रह गई।

फिर रुककर बोली, "हा, मान लो।"

"नही।"

"क्यो ?"

वे आपसे बहुत लगाव रखते हैं।"

'तून कसे जाना ?"

'मुझसे कहते थे।"

'क्या कहते थे कि मैं "

'कहते थे, उनका ध्यान रखा कर, कही इधर उधर जाए, या छत पर अकेले घूमे तो साथ ही रहा कर, कही चोट-फेंट न लग जाए। वह आजकल जरा "

"रुक क्यो गया ?"

"कहते थे, वह आजकल जरा मुझसे नाराज है।"

"तू जा मोहन। टक्सी रहने दे। एक कप कॉफ़ी ले आ।"

अच्छा।"

छाया बाहर आकर लॉन म बठ गई। उसे कुछ अजीब-सा महसूस हो रहा है। घासफूस, फूल-पत्ती, कुत्ता और झाडी के पार सडक पर चलते लोग नजर मे टिक नही रहे, तिरमिरा रहे हैं। कभी-कभी हलकी सी एक

तसवीर हिल जाती है तो लॉन म दो कुरो दिखन लगत हैं। यह अनुभूति उसके लिए नयी है। उसका कारण उसके लिए अस्पष्ट है। क्या उसकी नजरें खराब हो चुकी हैं या मन बहुत खराब है? शलेन्द्र को घर वापस चला जाना चाहिए। उसका रहना उसे अच्छा नही लग रहा है। उसन शलेन्द्र से काफी प्रेम किया है। वह धारणा अब टूट गई है। क्या टूट गई है? कोई जरूरी है कि कोई भी उसी तरह सोचे जस वह सोचती है। उसका निणय निमम नही है? और निणय हो ही नही सकता। कम से कम इससे कम निमम कुछ भी नही है। हम फसले स डरत क्या हैं? उसे नजरो से बचाकर अपन आपको 'ग्लोरिफाइड' क्यो महसूस करते हैं? निकम्म, नपुसक! ईश्वर के भरोसे छोडा। क्या किसी को किसी के भरोसे छाडा। नही एस ही करना होगा। यही उचित है, यही सबसे अधिक मानवीय है।

शलेन्द्र आकर पास खडा हो गया।

मोहन ने लाकर कुर्सी रख दी।

शलेन्द्र बठ गया।

बहुत देर दोनो चुप बठे रहे।

आखिर छाया ही बोली 'कहा गए थे शलेन्द्र?"

'डाक्टर की तरफ।

"क्या कहती है?

'इसी हफ्ते म सब निपट जाएगा।'

छाया ने सुना और ध्यान स शलेन्द्र का दखा।

'तो बच्चे के बारे म तो वही फसला रहा न?"

'हा मैं जानता हू, तुम बदलोगी नही।"

'ऐसा नही है पर कुछ सुझाओ शल। तुम मेरे पास रह सकते तो मैं उसे लेकर ही घर पहुचती। पर उसे मैं किसी के भरोसे छोडना नही चाहती, वह चाहे जानवर हो आदमी हो, या भगवान हो।"

"तो यही अतिम!'

"हा।"

'अच्छा मैं चाहता था चला जाऊ। पर एक हफ्ते की ही तो बात है।

फिर ।"

"फिर तुम चले जाना। मैं तो एक महीना बाद जाऊंगी।"

"हा, तुम्हे तो रहना चाहिए।"

छाया अब रसोई म बहुत जाने लगी है। रसाई कोठी के एकदम कोने मे है। पूरे कारीडोर को पार करके जाना होता है। छाया काफी टाइम खाना बनाने म लगाने लगी है। मोहन को साथ लेकर वह तरह-तरह के खाने बनाती और उन्हे खूब स्वाद से बठकर खाती है। शलेन्द्र होता तो बार-बार उससे उस खाने की प्रशसा कराती। फिर शलेन्द्र को वही छोडकर दोबारा रसोई में चली जाती और कुछ ही देर मे एक और खाने की चीज बनाकर ले आती और पूरे आयोजन से उसे खाना शुरू कर देती।

शलेन्द्र इस सब आयोजन मे थोडा हलका हो आता। पर पल पश्चात् ही उसे भय लगने लगता। पहले दिन का छाया का स्वरूप याद हो आता। वह नीचे घाटी म था। आधी ही गहराई म। कोठी की छत वहा से साफ ही दिखाई दे रही थी। पगडण्डी पर पल को खडे होकर उसने ऊपर कोठी की तरफ देखा। शाम का वक्त था। घाटी मे नीचे अधेरा दिखाई दे रहा था, ऊपर आकाश मे और छतो पर सुनहरा प्रकाश छाया था। छाया छत पर खडी थी। उसन धोती को पेटीकोट की तरह बाध रखा है। खाली कोटी पहन रखी है। बाल एकदम खुले हैं, बल्कि बिखरे हैं। उसने दोनो हाथ ऊपर उठा रखे हैं। उसके गोरे चेहरे पर सुनहरी धूप पडकर चेहरे को प्रकाशमान कर रही है।

पता नही क्यो, शलेन्द्र, एकदम सुन्न रह गया था। भयताडित।

छाया सामन बठी है। अचानक शलेन्द्र के मुह से निकल गया, "छाया, पहले का जमाना भी खूब था।"

"क्यो ?"

'वह जो जादूगरनिया होती थी न ।"

"हू।"

'उन्हें जिन्दा जला दते थे।"

छाया खिलखिलाकर हस पड़ी। बोली 'मैं जादूगरनी हू। मुझे ।"

नहीं वह नहीं, मैं तो ।"

'यह खामोशी ग्न क्वोक्या चीज़ है।"

दोनो फिर खाने म लग गए। कोई चार बजे होगे। आज आसमान म बादल नहीं है। गहरी उमस म, शरीर की नसो म एक खास किस्म का तनाव रहता है। वह अच्छा भी लगता है, बुरा भी। दिमाग की धुध नशे का मजा देती है। चारो तरफ की चीजें या तो खबसूरत दिखाई देती हैं या बद सूरत

छाया और नागेन्द्र दोनो बठे अलग अलग तरह की चीजें खा रहे हैं।

तुमने कभी गरीबी महसूस की है छाया।'

हा रहा है। भय का दूसरा नाम गरीबी है। मैं उससे बहुत नफरत करता हू।

नागे द्र स जवाब नहीं बन पडा।

चलो तुम्हे एक तमाशा दिखाऊ।

नागे द्र न उसकी तरफ देखा।

उठो।

छाया नागे द्र को उठाकर रसोई म ले गई।

रसोई म मोहन काम कर रहा है। जो बनना था बन चुका है। बतन भाडे निपटाए जा रहे है।

रसोई के एक कोन म टप है और उसके ठीक नीचे टप के पीछे से आकर चीटियो की एक कतार धीरे धीरे बढ़ा चली जा रही है। छाया पल को रुकी फिर उसन अचानक ही टप खोल दिया।

पानी की एक धारा बही।

मकडा चीटिया अनिच्छा स बह गइ।

छाया न टप फिर बन्द कर दिया।

नागेन्द्र की तरफ देखकर बोली कसा रहा खेल ?"

अच्छा।

कल तुम तो थे नहीं, म सारा दिन यही खेल खेलती रही।'

"अच्छा किया।'

"चीटिया झिझकती है, घबराती हैं, कापती है फिर डूब जाती है।"

शलेन्द्र चुप रहा और रसोई से बाहर निकल कमरे म आ कपडे बदल नीचे घाटी में डूबने निकल गया।

लाल लाल बादलो के गाले आसमान में छाए है। शैलेन्द्र कोठी म कम हो रहता है। इस समय भी नही ह। नीचे घाटी म खडा बादलो के लाल कतलो को देख रहा है। छाया को दद शुरू हो गया है। वह चुपचाप अपने पलग पर लेटी है। वही बजवती रग की साडी। छाती तक सिलवन चादर और चेहरे पर विकृति। छाया चाहती है कि किसी को खबर न दे। पर यह दद उसे घबरा रहा है। वह चारो तरफ देख रही है। बहुत देर म उठा नही जा रहा है। वह खिडकी पर जाकर नीचे घाटी म शलेन्द्र को देखना चाहती है—

मोहन भी घर म नही है शायद!

घाटी में शले द्र नीचे उतरा जा रहा है।

आसमान की गोट पर लाल रग के धब्बे कुछ काले, कुछ कत्थई होते जा रहे है।

हवा बन्द है। गर्मी ने तमाम दिन दिमाग को पिघलाए रखा है।

वह खडी, सुनसान कोठी इस समय एक ऐसे बडे अस्पताल जसी लग रही है, जिसमें सिफ एक मरता हुआ मरीज हो, न डाक्टर हो, न नस न कोई सगा-सम्बन्धी।

छाया का दद बढता जा रहा है।

वह उठती है। कारीडोर तक जाती है। मोहन को आवाज दती है। मोहन नही है। सामने लॉन में कुत्ता खेल रहा है। एक कुर्सी पडी है सामने की झाडिया पार कर सडक पर से आदमियो का एक लम्बा काफिला गुजर रहा है। छाया कुत्ते को पास बुलाने की कोशिश कर रही है। शाम को कुत्ता घास पर खेलना बहुत पसन्द करता है।

समय बीतता जा रहा है।

आसमान पर खून के धब्बे काले पड गए हैं।

घाटी म से जानवरो की आवाजें आन लगी हैं।

छाया कारीडोर म एक कुर्सी पर कराहती हुई बठी है।

चारो तरफ पीला अधेरा फला है।

घास के तिनके अधेरे म उडत हुए दिखाई नही दे रहे हैं, सिफ आवाजें सुनाई दे रही हैं।

घाटी म मोर, गीदड, झीगुर, मेढक और गिरगिट बोल रहे हैं।

छाया की दबी कराह कोठी म गूज रही है।

खट-खट, खट्-खट्, कोई कोठी म घुस रहा है।

वक्त कभी बहुत तेजी स और कभी बहुत धीम धीमे बीत रहा है।

छाया चीख-चीख उठ रही है।

घाटी म से डालियो के एक दूसरी से टकराने की आवाजें आ रही हैं।

झरने के बहने की घुटी घुटी आवाजें आ रही हैं।

कोई मोहन को पुकार रहा है।

जानवरो की आवाजो में बहुत-सी आवाजें डूब रही हैं।

शलेन्द्र छत की मुडेर पर बठा है।

उसन आखें मूद रखी हैं। चारो तरफ की आवाजें सुन रहा है। छाया के चीखने की आवाज से वह सिहर सिहर उठ रहा है।

चारो तरफ घनघोर अधेरा है।

शलेन्द्र के भीतर कोई हूक देकर रो रहा है।

आवाज दसो दिशाओ म फल रही है।

कोई रो रहा है।

शलेन्द्र के भीतर कोई रो रहा है।

कौन रो रहा है। इतनी रात गए, इतन अधेरे म इतने सुनसान म कौन रो रहा है।

मोहन पास आकर खडा है।

'चलिए, नीचे डाक्टर आपको बुलाती हैं।'

"क्या हुआ ?"
"हो गया।"
"छाया ठीक है ?"
'बेहोश है।"
"चलो।"
वक्त गुजर रहा है।

वक्त क्यो गुजर रहा है ? कोई आवाज चलते वक्त को रोक नही पाती। एक आवाज हवा में गूज रही है। रोने की आवाज म खुशी है। कोठी से उतरकर आवाज घाटी मे उछलती कूदती जा रही है। झरना क्या रुक सकता है ? झरना कब रुक सकता है ? ढलान क्या नही रहेगा ? 'सुनो छाया, तुम ठीक हो तो मैं घूम आऊ ?' 'मैं ठीक हू।' छाया क्यो ठीक है, वह हमेशा क्यो ठाक रह सकती है ? वह यहा न रहे या वह नही ही रहे तो ठीक होगा प्यारा बच्चा है ? हा, वह तो है। है तो सही। शलेंद्र घाटी में एक बेल के नीचे बठा है। बेल का चढना देखना उसे अच्छा लग रहा है। बेल चढ रही है। शलेन्द्र को हसी आ रही है।

धोबी और धोबिन कपडे धो रहे हैं।

शलेन्द्र एक पत्थर पर बठा मले पानी की बूदो को अपन ऊपर सहन कर रहा है।

पानी पर एक छोटी सी कागज की नाव तर रही है। उस पर कुछ बठा है। कुछ छोटा-सा।

छाया अपन पलग पर चित लेटी है।

उसके पास बच्चा नही है। मोहन उसे रसोई मे ले गया है।

छाया के पास एक छोटी-सा शीशी है स्टूल पर। एक सुराही है सिरहाने। एक शीशे का गिलास है पलग क नीचे। छाया को प्यास लगी है। उसका सिर तकिय से हटकर टिका है। उसके होठो पर पपडी जमी है। उसे प्यास लगी है।

'मोहन, ओ माहन !"

माहन सुन नही पा रहा है। बच्चा रो रहा है।

छाया कुछ देर आँखें मूदे लेटी रहती है। वह आँखें खोलती है। उसके परों के पास चादर नही है। वह अपने वदन को एक करवट देकर नीचे की चादर का आधा हिस्सा मोड लेती है। फिर तेज़ी से दूसरी तरफ करवट लेती है। दूसरा हिस्सा भी स्वतन्त्र हो जाता है। वही चादर वह ओढ लेती है। सिर तक ओढ लेती है। सपाट बहुत देर पडी रहती है। उसका दम घुट रहा है। चादर म छनकर रोशनी उस तक पहुच रही ह। छाया को डर लग रहा है। वह आँखें खोल लेती है और चादर को उलट देती है। डर लगता है। गहरी शिथिलता है। वह प्यास मे मरी जा रही है।

'मोहन ओ मोहन।"

मोहन नही सुन पा रहा। बच्चा रो रहा है।

पानी उसे खुद ही पीना पडेगा।

बच्चा रो रहा है।

वह झुककर गिलास उठाती है। उठकर सुराही से पानी उडेलती है। सुराही मे पानी के गिरने की आवाज़ तरती हुई नीचे घाटी मे चली गई है। छाया गिलास मुह तक ले जाती है। खाली पानी कडुवा होता है।

दो गोलिया सटकने क लिए वह सिफ दो घूट पानी पीती है। और वह नही पीती। प्यास से उसका दम निकला जा रहा है।

वह लेट जाती है।

' मोहन ओ मोहन।"

मोहन सुन नही पा रहा है वच्चा रो रहा है।

हवा म रेत हर समय होती है। तेज धूप म वह खूब चमकती है। तेज धूप पड रही है। ऊपर छत पर स सारा देहरादून दीखता है। छत पर पानी छिडक दिया गया है। एक कोने म छाया एक मूढे पर बठी है। छत के चारो तरफ मुडेर है। मुडेर पर काफी मोटी काई जमी है। काई का रग काला और हरा है।

छाया मूढे म बठी है। उसने अपनी दोनो बाहे मूढे की बाहो पर टिका रखी हैं। छाया कमज़ोर हो गई है। इस समय उसका रग गहरा पीला है। उसका शिथिल वदन सरकण्डो पर भारी बोझ की तरह

पड़ा है।

आसमान मे सूरज चमक रहा है। गम और उत्तेजित । सुबह बारिश बरसा है। सूरज नाराज है, दुखी है। तमाम घाटी के पेड पौधा, पत्थरो पर का सुबह का पानी सूत गया है। वह फिर प्यासे दीखने लग है।

छाया के पैरो मे पानी का एक गिलास रखा है।

'मोहन, ओ मोहन !"

मोहन सीढियाँ चढ रहा है।

पास आकर खडा हो जाता है।

'उसे वह पिला दिया !"

मोहन शायद 'हू' कहता है।

"शले द्र कहा है ?"

मोहन फिर कहता है, "है नही।"

"नपुसक !"

मोहन फिर कहता है, पत्ता पत्ता काप रहा है।"

"नही मोहन, नही। मैं नपुसक के पुत्र को नही बचा सकती। तुम उसे ले आओ।"

मोहन चुप है।

'भरी वह शीशी और पानी भी।"

मोहन चला जाता है।

छाया उठकर खडी हो जाती है। उसकी टाँगे अभी कापती है। चार ही दिन तो हुए हैं। ब्लीडिंग अभी खूब हो रही है। आए आधा घण्टे बाद कपडे बदलने पडते है। छाया का वह सब घिनौना लगता है। जुगुप्सा होती है। और औरतें जाने कसे करती है ! बडा घृणित है !

सभी कुछ घृणित है !

शलेद्र नीचे घाटी मे होगा। उस पर जाने क्या दबाव है कि नीचे घाटी में उतर जाता है। वह वहाँ बठा होगा। नपुसक !

मेरा पुत्र नपुसक का पुत्र है !

मैं उसे नष्ट कर दूगी।

भागा फिरता है।

झुकने से छाया को तकलीफ होती है। वह फिर आकर कुर्सी में बैठ जाती है। नीचे से उठाकर दो घूंट पानी पीती है। फिर बैठकर इंतज़ार करने लगती है। मोहन का बच्चे का अपनी दवा की शीशी का, पानी का।

उसके कान में कोई फुसफुसा रहा है, 'तुमने नपुंसक के पुत्र को पैदा किया।'

'तुम नपुंसक की पत्नी हो।

तुम नपुंसक के बेटे की मां हो।'

'तुम्हारे शरीर से आज एक नपुंसक के कारण खून बह रहा है। तुम भी '

चारों तरफ सब शान्त है। मोहन के सीढ़ियों पर चढ़ने की आवाज़ आ रही है। वह दबे पांव आ रहा है। छाया अपने मूढ़े में सतर्क हो गई है।

सो रहा है ?

हां।'

'वहां रख दो।'

" "

"मेरी गोलियां नहीं लाए ?

" "

"उसे रख दो, पहले लेकर आओ। और सुनो, माचिस। वह सब कपड़े भी जो इससे सम्बंधित हैं।"

मोहन दबे पांव नीचे चला गया है।

छाया को मोहन का यह दबे पांव चलना अच्छा नहीं लगता। कोई चोरी कर रहे हैं ? मैंने इसे पैदा किया है। नष्ट सिर्फ इसलिए कर रही हूं कि स्वीकार नहीं कर सकती। फिर यह मोहन दबे पांव क्यों चल रहा है ? कहीं यह शलेन्द्र को बुलाने तो नहीं गया ? गया होगा। शलेन्द्र आ जाए तो अच्छा है। पर जिसके रोंगटे ही खड़े नहीं होते, उसका क्या ।

मोहन ओ मोहन !"

मोहन आ गया है और सब कुछ ले आया है।

"मोहन, देखना, घाटी में से कोई आ तो नहीं रहा ? आ रहा हो तो ज़रा आवाज़ देकर कहो कि जल्दी आए। कहीं उसके आने से पहले सब निपट न जाए।"

मोहन घाटी की तरफ जाकर खड़ा हो जाता है।

"नीचे का गेट बन्द कर आए हो ना ? "

"हाँ।"

'सुनो, नीचे जाकर डाक्टर से कहो कि अब उसकी ज़रूरत नहीं है।"

" "

'जाओ "

मोहन फिर दबे पाव नीचे जा रहा है।

छत के बीचोबीच कपडो के एक ढेर पर बच्चा लेटा है। वह सो रहा है। एक कोन मे मूढे पर छाया बैठी है। उसने अभी अभी शीशी में से निकाल कर चार गोलिया एक साथ खाई हैं।

छाया उठती है और छत के बीचोबीच आकर खडी हो गई है।

बच्चे के चारो तरफ के कपडो को सगवाती है।

बच्चे के कमीज़ का बटन बद करती है। माथे पर लगे एक दाग़ को पोछ देती है। छाया को कुछ नीद-सी आ रही है।

कोई दबे पाव आ रहा है।

मोहन है।

छाया फुर्ती से हट मूढे पर आ जाती है। खून से लथपथ एक कपडा अचानक उसकी धोती मे से चू पडता है।

छाया उस कपडे को देख कर डर रही है।

'मोहन, तुम दबे पाव क्या चलते हो ?"

'मैं फोन कर आया।"

मैं, मोहन, बच्चे तक इसलिए गई थी कि ये सूखे कपडे मोहन एक बोतल मिट्टी का तेल ले आओ। और इस तरह दबे पाव न चलो। तुम्हारे चलने फिरने की खूब आवाज़ आनी चाहिए। हम कोई चोरी नही कर रहे हैं। अपना घर जला रहे हैं। इसलिए कि तुम जाओ, तेल लाओ।"

मोहन फिर दब पाव नीचे जाता है।

छाया उठती है। खून से सने कपडे को हाथ स उठाकर कपडा के ढेर के नीचे दबा देती है। पानी का एक गिलास पीती है। खाली पानी कडवा होता है इसलिए दो गोलिया और सटक जाती है।

उसकी पलकें झुकी जा रही हैं।

वह घाटी म देखती है।

पेड ही पेड, पौधे ही पौधे, झरने ही झरने, पत्थर ही पत्थर और शलेन्द्र ही शलेन्द्र ! पर सब घाटी म उतरते हुए ! छाया निश्चि त भाव स फिर आकर मूढे पर बठ जाती है।

कपडो के ढेर पर अब उसे कोई दिखाई नही दे रहा। सिफ खून से लथपथ कपडे दिखाई दे रहे हैं।

घाटी म शैलेन्द्र एक पत्थर पर चुपचाप बठा है। बायी तरफ की सडक पर एक दटे-फटे लोगो का काफ़िला जा रहा है। लॉन मे कुत्ता अकेला खेल रहा है। छत के एक कोने मे मोहन घुटनो मे सिर दिए बैठा है। कपडो के ढेर पर बच्चा लेटा है। सो रहा है। दोनो घुटने मुडे है। मुह छाया की तरफ है। एक हाथ सीधा पडा है। एक मे कुछ करेव है। छाया अपने मूढे म बठी है। उसने दो गोलिया और खा ली हैं। उसकी पलकें झुकी जा रही है। उसके हाथो मे दियासलाई है। वह तीली जलाती है। लौ से डरती है और दूर फेंक देती है। दियासलाई खाली हुई जा रही है।

छाया की पलकें झुकी जा रही हैं।

उसे गहरी नीद आ रही है।

सूरज ठण्डा है, बफ की तरह।

सब शा त है।

शलेन्द्र नीचे घाटी मे झरने के किनारे बठा है और कोठी की तरफ देख रहा है। इतन नीचे से वह इतनी बडी कोठी एक पिक रग की गुडिया-सी लग रही है। बीच मे कितने ही पेड-पौधे आ रहे हैं। आदमी-जानवर आ आ रह हैं। पर कोठी साफ़ दीख रही है।

शाम आने वाली है।

कोई रो रहा है।

शलेन्द्र के खूब भीतर कोई रो रहा है।

उसका सारा शरीर एकदम शिथिल है।

चारो तरफ जाने कसी बदबू फल रही है।

रो रहा है।

बदबू से आसमान ढक गया है।

अधेरा छाने लगा है।

शलेन्द्र वही लेट गया है।

कोठी की छत पर कोई आया है। उसने पोटली भर राख हवा मे बिखेर दी है।

अब सब चुप है, सब सुनसान है।

शलेन्द्र लेटा है।

रात का जाने कौन-सा पहर है। छाया की नीद टूटी है। मोहन पास खडा है। उसके हाथ म खाली दियासलाई है।

"उठिए। हवा मे ठण्ड बढ गई है।"

'क्या हुआ ?"

'सब समाप्त हो गया।"

'बाबू नही आए ?"

आए थे, फिर चले गए।"

छाया निढाल हो गई है। उसके मुह से कोई शब्द नही निकलता।

"तुम जा रहे हो, शल ?"

"हा।"

"जाओ, मिलना।"

'अच्छा।"

बाहर टक्सी खडी है। शलेन्द्र आज वापस जा रहा है। छाया अभी महीना भर ठहरेगी। एक नस उसने अपनी देखभाल के लिए तय कर

ली है।

ठीक हो गया न शल ? '

शलेन्द्र चुप है।

तुम्हे मैंने सब भया से बचा दिया ।"

शलेन्द्र की आखें खुश्क हैं।

'तुम कुछ सोच रहे हो शायद !"

नही।'

'अच्छा जाओ।'

शलेन्द्र टक्सी मे बठ गया है।

'तुम मन पर मल क्यो लाते हो शल, जो किया है मैंने किया है।'

शलेन्द्र पल को छाया को देखता है और नजरें झुका लेता है। टक्सी चल देती है।

शलेन्द्र चला गया।

छाया बुदबुदा रही है।

न स्वीकार न हत्या ! '

मोहन रसोई मे कुछ बना रहा है।

लॉन मे पडी एक कुर्सी पर कुत्ता बठा है। कारीडोर एकदम खाली पडा है। कोठी की सफेद दीवारो पर पीली रोशनी पड रही है। छाया छत की मुडेर पर बैठी है। झरने के पास बकरियां हैं, धोबी है, धोबिन है। एक तख्ता है, थोडी रेती है और कपडे पटख-पटखकर साफ हो रहे हैं।

छाया ने अपनी छातियो मे दूध निकालने की बोतल लगा रखी है। बोतल भर जाती है तो छाया उस घाटी मे उडेल देती है।

हवा मे कुछ राख के टुकडे उड रहे है।

हवा मे कुछ दूध के कतरे फल जाते हैं।

भीड़ न० दो मे

परेश को रास्ते भर कोई नही मिला।

वह हमेशा यह आशा करता है कि उसे कोई मिलेगा। वह उससे कुछ देर बातें करता रहेगा। कारखाने मे उसे देर भी हो जाएगी तो कोई बात नही। पर उसे कोई नही मिलता और वह हमेशा अपने काम पर ठीक टाइम पर पहुच जाता है।

उसके घर से कारखाना कोई दो मील है। वह पदल ही जाता है। रास्ते भर उसके दिमाग म कुछ कताई बुनाई होती रहती है। उसे अपने इस सोचने स बडा लगाव ह। रास्ते का पता ही नही चलता। सामने से अपने-पराये आते-जाते उसे दीखते नही। अपने मे डूबा रास्ते से अननुरक्त कारखाने की तरफ बढता रहता है पहुचता रहता ह।

गली मे घुसता ह तो कारखाने का ताला खुलता होता है। पहाडी चौकीदार बडे भरोसे से ताले खोलता है। फिर सबसे आगे-आगे उस लोहे से बनी दहलीज को पार करता है और पीछे वालो को अलग-अलग हिदायतें देता ह।

वह रोज सोचता ह, ये इतने सारे लोग और वह खुद, हर रोज वक्त से कुछ मिनट पहले क्यो आ जाते हैं

काम शुरू हो गया है। कारखाने के सब लोग अपने अपने काम पर लग चुके हैं। वे एक दूसरे से अपरिचित हो गए हैं।

रतिया तमाम कटरे में झाड़ू लगा चुकी ह । कटरे के एक कोने में उसने कूटे का ढेर लगा रखा ह। वह उसके पास बठी जरा सुस्ता रही ह। उसके बाद उसे वह कूडा उठाकर बाहर सडक पर पहुचाना है। कारखाने की खिडकियो में कई लोग खडे हैं। टकटकी लगाये रतिया की तरफ देख रह है। कभी कभी रतिया भी किसी एक से नजरें मिला लेती ह। मुस्करा भी देती ह। गुस्से से गाली भी सुना देती ह, फिर सुस्ताने लगती ह। इसे अभी बहुत काम करना ह। यह सारा कूडा कुछ देर और यहा पडा रहा, तो 'हाय तोबा' मच जायेगी।

रतिया इस कटरे की रौनक ह। कारखाने का मालिक भी कभी कभी उसस चुस्की ले लेता ह।

इस कारखाने में छपाई का काम होता ह। बडी-बडी मशीनें बडे बडे कागज छापती हैं। बडी बडी किताबें तयार होती हैं और चली जाती हैं।

शरीफ बहुत हसमुख आदमी ह।

उसन मालिक का शीशे का केबिन खोला और बिना किसी भूमिका के खबर दी, आज तो रतिया शर्मा जी की नजर में भी चुभ रही थी।

मालिक ने अपनी भारी गदन पर रखा सिर उठाया। अच्छा कहा और फिर किसी कागज में डूब गय।

शरीफ का स्वाद बिगड गया। बुडबुडाता हुआ वह केबिन से बाहर निकल आया—साले की मूड का ही पता नही चलता, अपनी मर्जी होगी तो घटा भर झक मारेगा, नही तो

शरीफ मशीनो में घुस गया ह। वहा से खिडकी की सलाखो में से उसन देखा ह। रतिया न दुपट्टा उतार दिया ह। एक बहुत भारी टोकरा एक मद न उठवा कर उसकी गदन पर रख दिया ह। रतिया की गदन ने मुर्गी की गदन की तरह एक लोच सीधी की ह। टोकरा सभल गया ह। अपने बेहद उभरे स्तनो से बेखबर रतिया धीरे धीरे नजरो से ओझल हो गई ह।

शरीफ झुझला उठा ह। असलम को उसन डाटा ह अब क्या हो गया हरामखोर, साले, आए पाच मिनट बाद मशीन बन्द कर रहा ह।'

असलम हस रहा ह। रतिया खाली टोकरा लिए फिर आ गई है। उसका चेहरा लाल हो रहा है। साढे नौ बज चुके है। धूप तेज हो रही ह। रतिया ने चारो तरफ ध्यान देना ब द कर दिया ह। वह होठो ही होठो मे कुछ बुदबुदा रही है। कम्बख्त, रोज देर हा जाती है।

परेश यहा सभी काम करता ह। प्रूफ रीडिग, उपर की देखभाल और एकाउण्ट्स। वसे इन सब कामो के लिए अलग अलग आदमी भी ह पर परेश की दखल हर जगह है। इसीलिए सभी उससे नाराज रहते हैं। शरीफ उसे बजरबट्टू कहता है। रामचद चौधरी उसे सीधा गाली देकर पुकारता है। दुर्गा तो रोज कहा करता है—इस साले का खून किए बिना उसका ज म सफल नही होगा। असलम का मत है कि छोडो भी साले को। क्या जान करनी है, मेढक के बच्चे से।

परेश बहुत उदास रहता है। वह सबसे मिल-जुल कर रहना चाहता है। पर जाने क्यो सब उससे नफरत करते हैं। घर में भी, बाहर भी। वह बस टकटकी लगाए सबकी तरफ दखता रहता है और सबका उपेक्षा भाव का रस लिया करता है।

परेश जब घर से चलता है ता धूप निकली निकली होती ह। अलग अलग मौसम मे उस धूप का उसके मन पर अलग अलग प्रभाव पडता है। सर्दी की धूप उसे अच्छी नही लगती। सिफ सर्दी दूर करती है। मन तक जसे पहुचती ही नही। बरसात मे धूप के निकलने पर उसे हसी आती है। बेमौसम की धूप। उसे अच्छी लगती है माच अप्रल की धूप। वह उसके मन को बीच से चीरती है दुविधा म डालती है कुछ पदा करने के लिए उकसाती है। पर परेश क्या पदा कर सकता है। वह तो न इतना पढा लिखा है, न उसमे कोई और गुण ही है, वह तो बजर भूमि ह निपट अनुवरा।

परेश को रात दिन की बदलती ड्यूटी बहुत पस द है। दिन और रात उस कारखाने मे वह भूत का तरह घूमता रह यह उसको सुख दता ह। रात की ड्यूटी मे कारखाने से निकल कर वह रात भर खुले रहने वाले टी-स्टाल पर बठ जाएगा और घटो बठा वहा चाय पीता रहगा। सभी लोग वहा आते है। चाय पीते है और चले जात है। कोई इतनी देर नही बठता

जितनी देर परदा बठता है। चाय बिकती रहती ह। मगल सठ के हाथ स चाय ले लेकर दूर दूर वठे भल्ली वाला, रिक्शेवाला को चाय पहुचाता रहता है। मगल अफीम खाता है। अफीम क नशे म ही चलता है। खाली गिलास ले आता ह। बीच-बीच म खड़े-खड़े सा भी लेता ह। मगल को उस स्टाल के सभी ग्राहक बहुत प्यार करते है।

परेश भी खडे खडे सोत मगल का टकटकी लगाए देखा करता ह।

परेश शायद सोचना नही जानता। वह कभी कुछ सोच नही पाता। पर बीनी बाता सम्भावनाओ और ऊलजलूल महत्त्वाकाक्षाग्रा की एक विचित्र-सी छावी उसके दिमाग़ म सोते-जागते उडती रहती ह।

परेश के इतिहास का किसी का कुछ पता नही ह। वह कही बाहर म आकर बसा ह। एक बीवी ह दो बच्चे हैं। एक भीड भरी बस्ती म एक मियाना म रहता ह। उसके चेहरे पर गहरी धारियाँ है। बोलता कम ह। हमता बहुत जोर से ह। फिर ज़ोर स चुप हो जाता ह। वह कहता ह या शोर या सन्नाटा! कहता ह जिन्दगी म दो ही चीजें है। बीच की कोई सामा य स्थिति नही ह।

परेश की पत्नी का नाम रीता ह। उसके दोनो बच्चे अभी बहुत छोट हैं। उनका अभी कोई नाम नही ह।

उसे पडोस मे कोई नही जानता। वह बस रीता क पति के नाम स हा जाना जाता ह।

परेश का कमरा एक पाच मजिला बिल्डिग के बीचाबीच फसा ह। उसकी छत की ऊचाई बहुत कम ह। उसमे कम हवा रह सकती ह कम आदमी रह सकते ह। आदमी के अ दर का उत्साह उसम कम होता ह। वह कमरे म बात करत सकुचाता ह। परेश भी घर म ज्यादातर चुप रहता ह। चुपचाप अपने सब काम करता ह। खाना पीना शीशा देखना। शीशा देखने का उसे बहुत राग है। बहुत देर तक बठा शीशा देखना रहता ह। अपनी आकृति को खूब तोडता मरोडता ह बिगाडता बनाता ह और उस विविधता म से रस प्राप्त करता ह। कभी-कभी वह रेडियो जोर म कम भी पढता ह। फिर पलग पर चित लेट जाता ह और हाथ उठा कर लेटे ही लेटे छत छन को नापने की कोशिश करता ह। उसका खयाल

है कि कुछ दिनों में इसी तरह उसका हाथ लम्बा हो जायेगा और वह लेटे हो लेटे अपनी छत छू लिया करेगा। उसके गोलू उसके उसके गालों पर कूदते रहते हैं। वह उन्हें कूदता हुआ देखता रहता है। कभी-कभी वह उनमें से एक को पकड़ कर अपने में चिपटा लेता है। वह उसका त्योहार का दिन होता है। पर बच्चा ज्यादा देर उसका प्यार सहन नहीं कर पाता। छिटक कर भाग जाता है। उसके चेहरे पर मढ़े दाने के मारे बाल कभी-कभी बच्चों को छितरा देते हैं।

उसे खयाल आता है, शेव बनवानी चाहिए। आज छुट्टी का दिन है बड़ा भीड़ होगी। खुद वह शेव नहीं बना पाता। पर सैलून में बनवाना है। बम्बई हेयर कटिंग सैलून! उस सैलून के हर आदमी से नफरत है। हर चेहरा उसे कमीना घिनौना चेहरा लगता है। उसका खयाल है कि उन सबमें आपस में एक समझौता है और वे उसकी हजामत जान बूझकर खराब बनाते हैं। कलम ऊँची नीची कर देंगे। मूछें कहीं से बारीक कहीं से लम्बी हो जायेंगी। या जानबूझकर दो एक जगह से खाल भी कुतर देंगे। बाल बनाएंगे तो हर दफा कंघी के साथ बाल खींचेंगे और उसे तकलीफ देंगे। वह इन बातों से बहुत खीजता है, बहुत झुंझलाता है। जितनी देर वह उस कुर्सी पर बैठा रहता है एक दारुण यन्त्रणा भोगता रहता है। जब भी उस कुर्सी से उठता है तो निश्चय करके कि अब वह कभी इस सैलून में नहीं आएगा। पर फिर उसी तरह छुट्टी के दिन बच्चे के याद दिलाने पर पत्नी से एक रुपया माँग कर चल पड़ता और मकान की सीढ़ियाँ से उतरता है। गली में इधर उधर नजर डालता है। फिर बायें या दायें पर घमाटना हुआ चल देता है। जैसा कुछ हर मौसम में होता है। धूप निकली निकला होता है। सर्दी की धूप उमस की धूप गर्मी और बरसात की धूप। सबके नीचे से खिसकता हुआ गली से खड़ खम्बों, नलों को छूता हुआ वह 'बम्बई हेयर कटिंग सैलून' के सामने खड़ा हो जायगा। मास्टर उसे देखेगा। मुस्करायेगा। कहेगा 'आइये न, बाबूजी।'

परेश चुपचाप अन्दर घुसेगा। एक कोने में इन्तजार में बैठे आदमियों के पीछे दुबक कर बैठ जायगा।

उमके वई नम्बर मिस होग तव नम्बर आएगा। आर वह उम कुर्सी पर ऐम चढेगा जम निजना की कुर्सी पर चढ रहा हा।

कभी कभी वह रजामन तनवान नर्म, भी जाना। चादर ग्राड कर पलग पर नट जाता ह ग्रौर लटा रहता ह। चेहर का वार वार हथली से रगडना ह ग्रार मजा लेना ह। उम हसी ग्राती ह। उसकी दाढी ग्रव भी नम ह। हथनी पर गुरगुरा लाती है। सिर क वाल भी वहुत मुलायम है। वह इन सवकी कार परवार नही करना फिर भी य हमशा उम खूवसूरत लगत ह। परग के सिर क वाना म सेतन शग्री क वाना का महलान पर सभी रमत है। विल्कुल मजदूरी की तरह वह यह काम करना ह। लगा तार। टर वेर तक।

चादर क नीच लेट परेश का कद वहुत लम्वा उन्त पतला लगता ह। दा वामा की एक लम्वी काठी।

उम दिन वह नहाता धोता नही, वम लेटा रहना ह।

कारखान का कोई मिलने ग्राता ह ता मिल नेना ह। लेटे ही लटे। वह कहता ह, 'यह तो वडा ग्र याय है परेग वावू।'

'हूं हता।"

'क्या करना चाहिए ?'

'मुझे क्या मालूम!"

'ग्रापको सव मालूम है, परेग वावू! पर ग्राप चुप रहते हैं।"

परेश सीधा लेट जाता ह। कहता ह, 'हा।'

वह जान लगता ह तो परेश उस देखता रहता ह। वह चला जाता ह, तो सीधा लेट जाता ह। सीधा लेट कर उसे ग्राराम मिलता ह। दिमाग़ म उडती ग्राधी कुछ हल्की होती ह। उसे छत की ऊचाई कमरे की लम्वाई ग्रौर चारो तरफ की रोशनी साफ-साफ नजर ग्राती है।

परेग के घर के चारो तरफ वहुत से लोग रहते हैं।

व जान क्या-क्या करते हैं परेश को कुछ पता नही ह। परेश की पत्नी न रह रह कर उसे उन सवके वारे म वताया ह, पर उसे कुछ याद

नही। सीधा लेटने पर जो चेहरे उसके जहन मे उभरते हैं वे कम से कम पडौस के चेहरे नही होते। उन चेहरो के बारे मे भी उसे कुछ याद नही है। पर वे उभरते हैं तो उसे उनकी कुछ सगति-सी लगती ह। लगता है जसे इन चेहरो को जाना जा सकता ह। जरा याद किया जाये, सोचा जाये तो उनके विषय मे, उनकी लम्बाई-चौडाई के सिवाय भी कुछ याद किया जा सकता ह। उनकी भीड बहुत है। चारा तरफ से घिरे आते हैं। पत्नी वार-वार उसे उस भीड से बाहर लाती ह। पर परेश फिर खो जाता ह। उस भीड मे उसे सतोप मिलता ह। सुख मिलना ह।

परेश का पलग जरा ढीला ह। वह उसम एकदम सीधा नही लेट पाता। एक 'कव' लेकर लेटता ह। उसे अच्छा भी शायद वसे ही लेटना लगता ह। सर्दियो मे वह पूरे शरीर पर लिहाफ ओढ लेता ह और उस अधेरे कोटर मे अपनी एक अलग दुनिया बसा लेता हैं। उस दुनिया म कुछ अशरीरी लोग घूमते फिरते दीखते हैं—असतक, असम्बद्ध।

'सुनो, देखो कौन आया है।" पत्नी उसे पुकारती है।

वह सुनता है। उस आवाज की सगति अपनी दुनिया के किसी व्यक्ति से बठाता है और चकित भाव से चुप रहता ह।

"उठोगे नही?"

वह उठ बैठता ह।

चारो तरफ कुछ घुघ ह। जिसे वह चीरने की कोशिश कर रहा ह।

परेश उस घुघ से टूट नही पा रहा है।

"अच्छा, तो मैं चलता हू, फिर आऊगा।"

परेश फिर लेट गया है। फिर खो गया ह।

उसे कुछ याद नही रहेगा।

अकसर उस कुछ याद नही रहता।

परेश की यह गति रीता देखती है। आखो म आसू भर लाती है। उस डर ह किसी दिन वह उसे भी न भूल जाये।

शहर की जिन्दगी मे बहुत कुछ याद रखना होता ह। सडक पर किस

तरफ चलना चाहिए। पडोसी की छत पर नही चढना चाहिए। मोटर, तागा बस की कहा खडे होकर इंतजार करनी चाहिए। मामूली मामूली बातो पर कस झगडा करना चाहिए और बड़े स बडा जुर्म करके कसे उस पर्दे क पीछे खिसका देना चाहिए। आदमी शहरी या ही नही बन जाता, बडी महनत करनी पडती है।

परेश शायद अभी शहर को पहचान नही पाया है। उम लगता है वह उस पहचान नही पाएगा। पर अब वह शहर छोडकर जा नही सकता। वापिस कहा जाएगा। हर वह पडाव भुला चुका है जहा-जहा स आया था। अब उम अपन कारखाने का रास्ता याद ह। वह आख मूद कर वहा तक पहुच सकता है। वह आख मूदे ही रहता है। चारो तरफ कोई भी तो उस ठीक से दिखाई नही देता। कोई उसस टकराता नही, काइ उसके पास नही आता।

किस कदर लम्बा रास्ता है जिसस चलकर वह कारखान पहुचता है। सडक पर किस कदर भीड होती है। किस कदर शोर होता है। वे सब आवाजें आपस म मिलकर कितनी अर्थहीन हो जाती है। परेश कोई आवाज़ नही सुनता। कोई आवाज़ उसकी समझ मे नही आती। वह किस कदर जड-सा महसूस करता है।

सार रास्त म मोड ही मोड है। हर मोड पर ऊची ऊची कुतुब-मीनारी बिल्डिगें खडी है। जिनके अलग अलग रग हैं। जिनके अलग-अलग तरह क छज्जे है। उन पर अलग अलग तरह की चिकें और चिको के पीछे अलग तरह की जिन्दगिया बीत रही हैं। कोई किसी को पहचानता नही, जानता नही और किस कदर एक दूसरे से चिपटे चिपटे रहत हैं। गलिया क नाम अलग बस्तिया के नाम अलग, राह म चलन फिरने का ढग अलग और इस अलगाव से कितन अपरिचित, अपन आप से कितन तटस्थ, कितन शत्रु !

परेश सब का देखना चाहता है। उसे कुछ दीखता ही नही। उसे सबस प्यार करन की लालसा है। पर क्या करे। वह थक गया है। वह तटस्थ हो गया है। दरअसल वह असमर्थ है। कही भी बठन के योग्य नही है।

प्रेस म भी वह बठता नही है। हर समय यहा-वहा घूमता रहता है।

यह प्रेस चौबीसो घटे चलता है।

मशीनो की उठती गिरती आवाजो मे परेश चुपचाप घूमता है।

किसी किसी दिन आकर परेश अपनी मेज पर बठ जाता है और दिन भर बठा रहता है।

उस दिन शरीफ उसी के सामन बठ कर उसे प्रेम की सारी सूचनाए दता है—रामच द चौधरी साला हडताल करन की बातें किया करता है। दुगा न रमेश का भापड धर दिया। आज बुद्दू न उलट पज कस दिए। तुम जरा सख्ती से डाटा करो। परेश बाबू, आप इतन उदास क्या रहते हो ? चारमीनार की सिगरट पिया करो। तुम

शरीफ चला जाता है तो चौधरी आकर डट जाता है परश बाबू, दस्तखत करो।"

क्या है ? '

कुछ भी हो, दस्तखत करो।

क्या ?'

हम कह रहे है।'

"अरे वाह ! नही करता।

नही ?

'ना, तुम जाओ।'

तुम जि दा रहना नही चाहते।"

परश के चेहरे पर दु ख की एक गहरी छाया घिर गई है। उसन मज पर माथा टिका लिया है। मशीनो की बेहद तीखी आवाज उसके कानो म पड रही है। शायद किसी मशीन का कोई पुजा ढीला है। लोहा सीधा लोहे म टकरा रहा है। वही आवाज उसके सिर म एक गूज पदा कर रही है। भीतर कुरेद रही है और जान क्या क्या निकाल कर उपर ला रही है। परेश उन उभरते हुए अक्षरो को कभी पढ नही पाता।

बाहर शायद हल्की हल्की बारिश हो रही है। प्रेस के चारो तरफ के दरवाजे बन्द हो गए है। दफ्तर मे मालिक के पास कुछ लोग बठे है। चाय पी रह

है। मशीन डिपार्टमेंट में सब मशीनें चल रही हैं। मशीनों की आवाज़ों का रिद्म छत पर पड़ती बारिश के 'रिद्म' से होड़ लेता हुआ गूंज रहा है। कुछ लोग चुप है। कुछ लोग गाना गा रहे हैं। ऊपर कम्पोज़िंग में तो पूरे बसुरे सुर में कव्वाली चल रही है। बारिश की आवाज़ में कव्वाली की आवाज़ यहां वहां नहा जा रही अपने डिपार्टमेंट तक ही सीमित है। मुनीम जी खाता में डूबे हैं। प्रूफरीडर प्रूफ पढ़ रहे हैं। चारों तरफ से बंद प्रेस की विशाल बिल्डिंग एक दुर्ग की तरह लग रही है। अंदर की कोई आवाज़ बाहर नहीं जा रही। बाहर की कोई आवाज़ अंदर नहीं आ रही।

परेश मेज़ पर माथा टिकाए सो रहा है।

मालिक गश्त दर्ज कर जा चुके हैं।

परेश को लगता है कि सब प्रेसों में एक ही तरह के लोग काम करते हैं। उसी तरह आपस में लड़ते हैं। उसी तरह कर्ज़ा लेते हैं। उसी तरह दिन में दगी करते हैं और ज़िंदगी को उसी तरह खींच-खींच कर काटते हैं। कोई सुलफे की चिलम के लम्बे कश भरता है तो कोई बीड़ी के, कोई चिरिया ना कोई कर्नेडर सिगरेट के। साफ कपड़े पहनकर परेशान रहते हैं। मैले कपड़ों में उन्हें जोश आता है ताज़गी आती है, हाथ-पैर दिमाग़ तेज़ काम करते हैं। ये कुछ ठिठक ठिठक कर चलते हैं। साइकिल पर कूद-कर चढ़ते हैं और इनके चेहरों पर भय, नाराज़गी और घृणा के भाव घुले मिले से रहते हैं। इनका कोई ईमान धर्म नहीं होता। जुर्म इनकी रगों में कूट-कूट कर भरा होता है। पर कर कुछ नहीं पाते। जानते ही नहीं कि वे करना क्या चाहते हैं। लाचार होते हैं। तभी जुर्म करते हैं।

परेश इनसे बहुत डरता है।

वह सोचता रहा, "चौधरी की बात केबिन में कहनी चाहिए।'

पर उठने को मन नहीं हुआ। सोचा, शाम को कहूंगा।'

शाम को उसने कहा, "कुछ हड़ताल-वड़ताल की प्लान बन रही है।'

तुम्हें कैसे मालूम ?"

यों ही, पर सही मालूम है।'

'कुछ और पता लगाना, बताना।'

"अच्छा।"

परेश बाहर निकला तो सकडो आदमी जमा थे। कटरे से एकदम बाहर। अधिकाश उसे जानते थे, उसी प्रेस के थे। कुछ ऐसे भी थे जो शायद बाहर से आए थे। परेश को लगा वह ठहरे। उनकी बातें सुने। पर वह रुका नही। वह भयभीत था। चौधरी और शरीफ उस भीड के बीचो-बीच थे। उसे लगा कि वहा उसके लिए कोई जगह नही है।

उसे सबने देख लिया। सब चुप हो गये।

वह कन्नी काट कर निकल गया।

बहुत-सी फब्तिया बहुत से लोगो ने उस पर फेंकी।

उसने सुना। वह चुपचाप निकल गया पर उसका मन कही बहुत भीतर से तीता हो गया। उसे लगा कि लोग उसे बेकार इतनी गालिया देते हैं। इस तरह कोसते हैं। वह चुप रहता है सिर्फ इसलिये। पर वह क्या बोले। वह क्यो किसी से लडे। दरअसल उसमे ताकत ही नही है। वह कोई भी काम नही कर सकता। वह थका हुआ आदमी है। इन लोगो को उससे कुछ भी आशा नही करनी चाहिए। वह पचडे मे नही पड सकता। अब कम से कम वह थक कर जाकर पलग पर लेट तो जाता है। फिर क्या होगा। वह होगा तो कुछ बन नही जायेगा। वह नही होगा तो किसी का भी क्या बिगड जायगा। बीवी है, बच्चे हैं। ये सब बेकार बातें हैं। आदमी अपने सीमित दायरे से सच ही बाहर नही निकल सकता। दायरा टूटते ही आदमी टूट कर बिखर जायगा। नही, वह ऐसा नही कर सकता।

सडक पर आकर उसने चारो तरफ देखा। कितने सारे लोग एक-दूसरे से असम्बद्ध इधर-उधर आ-जा रहे हैं। एक ताग मे तीन सवारिया बैठी हैं। उस एक की इन्तजार है। एक ठेलेवाला बोझ ढोते-ढोते थक कर एक किनारे खडा हो गया है। बराबर का कपडे का थोक व्यापारी उससे झगडा कर रहा है। 'यहा क्यो खडे हो? आगे बढो। रास्ता रुकता है।' ठेलेवाले का साथी दूर खडा बीडी पी रहा है। दोनो को झगडता देखकर हस रहा है। चौराहे पर विशाल बरगद के पेड के नीचे एक छोले-वाला तल्लीन भाव से पत्तो पर छोले सजा रहा है। परेश सोच रहा है,

सभी तो अलग अलग हैं। इकट्ठे एक सड़क पर खडे हैं पर कोई किसी को नही पहचानता। यही स्थिति सच है। इसी को स्वीकृति मिलनी चाहिए। भीड म घुसकर बिना कारण परिचित होने का नाटक रचना मूर्खता है प्रवचना है असगत है।'

तागा उधर से जा रहा था जिधर परेश का घर है पर वह उसम नही बठा। चुपचाप पदल ही चल दिया।

परेश थका हुआ है। कारखानो की थकान और थकानो स कुछ अलग होती है। मारा शरीर सूज जाता है। नसा म गम सीसा तरता है। पलकें कुछ भारी हो जाती हैं। मन म कुछ ऐसा तरता है जसे खाल उधडी चर्बी हो। भूत कही बिखर जाता है। भविष्य सूखी लकडी की तरह छाती म अटका होता है। वतमान एक गहरे काले धुए की तरह आसमान पर चढा होता है।

परश की स्थिति इस समय एसी ही है। वह धीरे धीरे घर की तरफ जा रहा है।

परेश अकसर सोचता है कि दोपहर को ये बाजार जान कसे लगने होगे। वह कभी यहा दोपहर को नही आया। सुबह या शाम। सुबह को हजारो साइकिलें एक दिशा म आती हुई दीखती हैं, जल्दी जल्दी। और शाम को वे ही साइकिलें जाती हुई दीखती है, थकी थकी। यह कितना वडा शहर है। पूर्वी कोने पर मिलें ही मिलें है। मिलें और कुम्हारो की एक वडी बस्ती। धुआ गलियो और मकानो के कोने कोने म पीले मवाद की तरह भरा होता है। एक तरफ कच्ची वस्तियें है। गन्दी, घिनौनी। एक तरफ नया शहर है। सलोना, पेडा की छाया म पडी मौलसिरी की तरह। बीच म शहर ही शहर है। लाखो मकान। हजारो गलियें। अनगिनत लोग। लाखो लाख। नहर को ऊपर आसमान से देखें तो दीमको का महल लगे। कितनी पतली-पतली गलियो में खडे-बठे सोते लोग। परेश सोचता है ये लोग इतने सारे लोगो को गिन कसे लेते हैं। नही, जरूर गलती होती होगी। यह हिसाब किताब सब जाली है सब गलत है।

इतने सारे लोगो के दुखो के बारे म सोचना मूर्खता है। सोचा जा ही नही सकता। सबको जसे हैं वसे रहने देना चाहिए। सबकी स्थिति

अपनी अपनी जगह ठीक है। उसे बदला नही जा सकता।

परेश को घर पहुचते-पहुचते हसी आने लगी। वह सोचता है क्या मूखता है, "अपना भविष्य आप बनाएगे। नानसेन्स।"

रीता कहती है, "तुम नपुसक हो।"

परेश चुपचाप पलग पर सीधा लेट जाता है और हाथ ऊचा कर-करके छत छूने की कोशिश करने लगता है।

कहता है, 'हा, हू।'

'इन बच्चो के भविष्य का जाने क्या होगा।'

भविष्य का कुछ होता नही। भविष्य आ जाता है, उसे भोग लिया जाता है।'

'फिर तुमने शादी क्यो की ?'

'भाग्य में थी।'

ओह !'

'सुनो, तुम बेकार इतना सोचती हो। चट्टान बहुत भारी है। उठाने की चेष्टा से हटेगी नही, सो जाओ।'

'हा।

बच्चे दोनो पहले ही सो चुके थे।

अधेरा हो गया पर परेश दोना हाथ उठाकर अपनी एकदम नीची छत छूने की कोशिश करता रहा।

परश जिस बस्ती म रहता है वहा सब मकान चार मजिले, पाच मजिले हैं। लम्बी-लम्बी एकदम सीधी गलियें मकानो म डूबी-डूबी-सी लगती हैं। आदमी चलता है तो छोटा हो जाता है। कभी-कभी गली सूनी होती है, एक आदमी एक तरफ से गली मे घुसता है, अचानक मुडता है और किसी भी मकान म घुसकर गायब हो जाता है। गली फिर बहुत सूनी हो उठती है। लम्बी काली-सफेद-सी, रूखी-सी लकीर। उस पर तरह-तरह से चलते हुए आदमी, औरतें, बच्चे। परेश बुखारी की खिडकी से खडा यह देखा करता है। उसको दृष्टिभ्रम है। वह अपनी इस

भ्रामकता का बडा आनन्द लेता है, उस पर बडा हसता है। उसे यहा-वहा घूमते सब आदमी जानवर नजर आया करते हैं। किसी की चाल उसे रीछ जसी लगती है, किसी की बन्दर जसी। कोई कुत्ते की तरह मुह चलाता है। कोई बैठा होता है तो लगता है, कछुआ बठा है, या मेढक बठा है, या ऊट बठा है। उसे एकदम सपाट लेटी औरत हमेशा दीवार से चिपकी एक बडी छिपकली लगती है। वह अपने इस एहसास से बहुत तग है। कोई चीज ऐसी नही है जो उसके लिए किरकिरी नही है। वह किसी चीज का रस नही ले सकता। चुप उसे रहना पडता है क्योंकि जोर से वह बोल नही सकता। उसकी सामथ्य भी नहीं है। और उसे मालूम है जोर से बोलने से कुछ नही होता, सिफ शोर मचता है। घिनौना शोर, रेतीला शोर।

किसी कदर रात उसे अच्छी लगती है। रेतीलापन होता है, पर दिखाई नही देता। निगला जा सकता है। रात चाहे कमरे मे हो, चाहे शहर मे चाहे शहर से बाहर घने-उजडे सुनसान जगलो मे, वह खूबसूरत होती है। घर मे खिडकी से उभरते अधेरे म से पत्नी की गोरी चमडी की झलक, शहर मे दूर-दूर तक मकानो के पीछे उठी हुई मिलो की चिमनिया से गोरा अधेरा, और कभी-कभी कुछ चिनगारियें, शहर स बाहर जगली जानवरो की आवाजें—सभी खूबसूरत लगता है। परेश को लगता है उसके अन्दर भी कुछ-कुछ ऐसा ही है। कोई नगा लेटा है, कही भूरी राख म से धुआ उठ रहा है, कही कुछ आवाजें उठ रही हैं — जगली जानवरो की आवाजें, आदमियो की आवाजें, मिली-जुली आवाजें। एक ही सुर म

सारी रात परेश यही सब देखता-सुनता रहता है।

फिर शायद सुबह होती है। चारो तरफ शोर हल्के-हल्के शुरू होता है। फिर तेज होता है। परेश अपने को समेटता है। रात भर की थकान उसके चेहरे पर होती है।

सुबह को वह बहुत थका होता है।

फिर भी वह उठता है। सब-कुछ करता है। नीचे जाता है। मुह धोता है। नहाना उसे बहुत पसन्द नही है। उसस उसका नशा टूटता है।

फिर चाय पीता है और धीरे-धीरे उस पाव-मजिले मकान मे फसी मियानी म से निकल कर, गली म आकर, प्रेस की तरफ चल देता है।

फिर वही शहर वही व्यवस्था, वही असम्बद्धता, वही उसकी तटस्थ अनुरक्ति। कही-कही, कभी-कभी कोई दुघटना हुई होती है, तो जल्दी-जल्दी मे एक भीड बनती है और छितरा जाती है। परेश उनके चेहरे के क्षणिक त्रास को देखकर मन ही-मन खूब हसा करता है।

वह प्रेस की गली मे घुसा है। इस समय भी यहा बहुत से लोग है। पहाडी चौकीदार ताला खोल चुका है। रतिया एक टोकरा फेंक आयी है। पर न आज कोई रतिया को निहार रहा है, न चौकीदार के पीछे प्रेस मे ही घुसा है। सब बाहर खडे हैं। उत्तेजना मे बातें कर रहे हैं। शरीफ़ और चौधरी भीड के बीच खडे हैं। सब से कुछ कह रहे है। सब को कुछ सुना रहे है।

परेश भी खडा हो गया।

परेश को महसूस हुआ कि उन सबने बातें बन्द कर दी है।

वे उसे देखने लगे है। हसने लगे हैं।

चौधरी बोला, 'आओ परेश बाबू।"

शरीफ़ ने दोनो बाहा को फलाकर जगह देने का इशारा किया, 'आइये हुजूर।"

दुर्गा ने कहा, "जाने दे साले को, मालिक इसके बिना दुखी हो रहा होगा।"

सब हस पडे। पर चौधरी न दुर्गा को डपटा, 'है पक्का चोट्टा, कुत्ते की दुम बारह बरस नली म रही, सीधी नही हुई। बोलना ही न आया। अबे साल, परेश बाबू भी मजदूर आदमी है, कोई मिल्कियत नही खडी इनकी।'

कइया ने कहा सही बात है।"

' तो फिर '

इतने म किसन को मुनीम प्रेस म घुसता हुआ दीख गया। उसने लपक-कर आवाज दी, 'मुनीम जी।"

पतले दुबले मुनीम जी ने गदन घुमाकर देखा। फिर वे कुछ कूदकर

प्रेस मे घुस गए। उनकी धोती का पल्ला छिनाल औरत की साडी के पल्लू की तरह किवाडो की जोडी के पीछे अ तर्धान हो गया।

सब हस पडे। परेश बाबू के प्रति उठी विरक्ति दब गई। चौधरी ने परेश का अपनी एक लम्बी बाह म समेट लिया। बोला, "परश बाबू, हमारे साथ आ जाओ।"

परेश ने कहा, 'मैं अलग कहा हू।"

'यूनियन के मेम्बर बन जाओ, हडताल के नोटिस पर दस्तखत करो।"

'करूगा, पर जानना चाहूगा कि उससे होगा क्या ?"

'बहुत कुछ होगा परेश बाबू।"

"क्या ?"

किसन ने फिर छेडखानी की, 'आपको नही मालूम।'

'यही मालूम है कि कुछ नही होता।"

'परेश बाबू, दुनिया तरक्की कर रही है।'

"हा शायद।"

'अच्छा, छोडो मेम्बर बनोगे ?"

'बन जाऊगा।"

सब खुशी-खुशी प्रेस की तरफ चल दिए। सामने से रतिया टोकरा लिए आ रही थी। चौधरी ने कनखिया से उसकी तरफ देखकर ज़ोर से कहा, "हये क्या शगुन हुआ है।"

सब ठहाका मारकर हस पडे।

रतिया की छातिया और ज़रा उभर आइ।

प्रेस म कई बडे-बडे हॉल है। एक कतार मे मशीनें खडी है। एक म लाइन की लाइन कम्पोजिंग रेक्स खडे हैं। सबके ऊपर बल्ब लटके हुए हैं। बल्ब दिन रात जलते हैं। सकडो बल्ब। दिन म कई फ्यूज हो जाते हैं। बल्बो की क़तार टूट जाती है। पर कुछ ही मिनट के लिए। फिर एक नया बल्ब आता है। सब 'नामल हो जाता है। बडी-बडी विशाल मशीनो पर आदमी खडा होता है। बटन दबाता है और गहरे झटको के साथ,

हल्की फिसलन के साथ मशीन चलने लगती है। फिर सब मशीनें चल निकलती हैं। कुछ छपता है। इकट्ठा होता है। एक तरफ सजा कर रख दिया जाता है। फिर वह चला जाता है। नया छपता है। और एक तरफ कम्पोजिंग है। स्टिको पर टाइप के दानो की किट-किट किट। एक अजीब-सा किचकिचापन, रेतीलापन रहता है। बडे-बडे केस, उनमे अलग अलग खाने, उनमे अलग अलग अक्षर और आदमी की उगलियें मशीन के पुर्जे की तरह उन खाना मे घुसती हैं, एक अक्षर ढूढती हैं, उन्हे सीधा करती हैं, और स्टिक मे जमा देती हैं। एक आदमी जुडे हुए अक्षरो को बिखरा रहा है। वापिस उन खाना मे फेंक रहा है। उसके हाथ काले स्याह हो रहे हैं। उन्ही हाथो से वह कभी कभी चेहरे की खुजली भी मिटा लेता है। वह सोता हुआ-सा काम मे डूबा है। उसे कुछ मालूम नही है।

बीच-बीच मे इधर-उधर से आवाजें भी आ रही हैं।

'ओ लक्ष्मीनारायण, साले शादी कब करायेगा ?"

'तुझे क्या बे, करा लेंगे।"

'साले उम्र निकल जाएगी।"

"अबे तो, तुझे क्यो दरद हो रहा है। शादी हमारी होगी, कोई तेरा हिस्सा

सब हस रहे हैं।

"रहा साला नाबालिग का "

लक्ष्मी चुप हो गया है।

'अबे तुलसीदास भाई, तेरी लुगाई वापिस आई या नही।"

"आएगी कसे, अब अच्छी बर्फी बननी ही बन्द हो गई। वह ता तभी आती है जब अच्छी बर्फी बनती है।"

चौधरी जरा तुलसीदास पर तरस खाता है, "कौन है भाई ये, तुलसी को पाई (एक बने पेज का गिरकर टूट जाना) कर रहा है ? साले, कल को कापी नही दूगा।"

दुर्गा एक कोने से बोल रहा है, "चूहे के हाथ आ गई हल्दी की गाठ, साला वही पसारी बन बठा कापी हम मालिक से ले लेंगे।"

चौधरी ने फ़ब्ती कसी है—

"हल्दी की नही, कोयले की गाठ। साला कालू।"

सब फिर बहुत जोर स हस रह हैं। टाइप की क्टि किट और तेज हो गई है।

चौधरी पेज मेक अप कर रहा है गुलदान के हाथ म मगजीन है। गली म कम्पोज किए मटर को उठा उठाकर वह तजी से रख रहा है। चौधरी को चिढाता जा रहा है।

'साला पेज बाधता है।"

'जस्टिफाई ठीक नही है साले, नही तो पूले की तरह बिछा देता।'

"अबे जा ।'

परेश उन बडे बडे हॉलो के कोनो मे खडा होकर बहुत-बहुत देर तक यह सब सुनता रहता है। ग दी गालियें। जान स मार देने की धमकियें। स्टिको का डडो की तरह इस्तेमाल। टाइपो का एक-दूसरे पर फेंकना, फिर एक रुपया उधार देना न लौटाने पर साले का कमीज उतार लेना और फिर एक दूसरे के गले म बाह डालकर निकलना। यह सब परेश को अ दर से कही इन सब के प्रति विरक्त करता है। वह बल्बो की लम्बी कतार के सिरे पर खडा हो जाता है। बहुत बहुत देर तक खडा रहता है और फिर धीरे धीरे सीढियो स उतर कर नीचे चला जाता है। उसे लगता है सब कितने नगे जानवर हैं। कितने वहशी कितने ज़लील, कितने कमीने। पर उसे गुस्सा नही आता। कभी-कभी लगता है कि इन सबका नगे खेलते बच्चो की तरह भी आन द लिया जा सकता है। कभी-कभी उसे डर लगता है, बडा भयावह। उस दिन असलम की एक उगली सिलिण्डर का छपका काटकर ले गया तो किसन बहुत देर हसता रहा। न दू के पर पर बुन्दू न जानकर कसा-कसाया फर्मा डाल दिया रोशन का हाथ कटिंग मशीन की दाब म आकर फट गया, ऊपर से छुरी घूम गई पर लगा जस कुछ हुआ ही नही। आफताब ने मशीन पर से खून रगड-कर साफ कर दिया। परेश देखता रहा। आफताब का चेहरा सपाट था। वहा कोई भाव नही था। किसी ने शायद मजाक मे, शायद तन्ज म पूछा, 'मिया, ये कहा का खून है जो इतने स्वाद से साफ कर रहे हो।'

आफताब ने हाथ का कपडा गूदड म फेंक दिया, बोला, 'एक चूहा

पिचक गया यार, ये वाला स्वाद है ?'

परेश सुनता रहा। बत्तियें उसी तरह जल रही है। तमाम मशीनें एक स्वर मे चल रही है। एक मैगजीन की 'पोस्टिंग डेट' है। कुछ रुक नही सकता। रोशन को अस्पताल भेज दिया गया है। उसकी जगह राम लाल आ गया है। रामलाल चुस्त है, सतर्क है। उसे किसी का लेना देना नही है। वह काम करते हुए बिल्कुल नही सोचता। ऊपर कम्पोजिंग म किट किट चल रही है। कुछ देर को किट किट रुकी थी जब रोशन के हाथ पर स्पिरिट डाली गई थी।

परेश अपनी सीट पर आकर बठ गया है।

मुनीम जी ने खाता से नजरें उठाई है। उसकी तरफ देखा है। इन्त-जार की है कि परेश कुछ कहगा।

परेश चुप है।

मुनीम जी खुद ही बोले हैं, बेचारे रोशन का हाथ आ गया। क्या कूदता-हसता, सुबह प्रेस म घुसा था।'

परेश फिर भी चुप ह। मुनीम जी की तरफ देख रहा है।

मूनीम जी कह रहे है "भगवान की लीला को कोई नही समझ सकता परेश बाबू, वह पल में क्या से क्या कर देता है।'

परेश ने कहा ह, हा, ह तो।'

परेश बाबू आप यूनियन के मेम्बर बन गए ?

'हा।'

बुरी बात है। राम राम !'

'क्यो ?'

'वे तो सब अधर्मी है, परेश बाबू अपना धम छोडने को कहते हैं। कहते हैं मालिक से लडो। नौकर का धम ह कही, मालिक से लडना।'

परेश का सारा शरीर कडुआ हो उठा ह, हा, मुनीम जी।'

मुनीम जी फिर खाता मे डूब गए हैं।

इस प्रेस के हिसाब अब भी सब पुराने ही तरीक़ा से चलत ह।

प्रेस का सब काम ठीक स हो रहा ह।

केबिन म मालिक लोग चाय पानी पी रहे है।

मुनीम जी खातो मे डूबे डूबे उठे हैं। जल्दी से केबिन म घुसे हैं। मालिक के पास की अलमारी खोली है और चुपके से वह आए हैं।

"परेश भी यूनियन का मेम्बर हो गया है।"

शाम को परेश को केबिन म हाजिर होना पडा, सुना है आप भी यूनियन के मेम्बर हो गए हैं।"

हा।"

"अच्छा ?"

"आपको चिन्ता करन की जरूरत नही है।"

मालिक ने परेश की तरफ देखा है और मुस्करा दिए हैं।

परेश को यह सब खेल सा लगता है। ये गलियें, ये सडकें, ये हजारहा आते-जाते लोग। य कारखान और उनमे उभरती अमीरी-गरीबी। सब उसके लिए कभी कभी इतना असमजस पदा करता है कि वह भटक-सा जाता है। जिस प्रेस म वह काम करता है, वह तो एक छोटा-सा प्रेस है। उसकी समस्याए, उसके खेल इतने बडे नही हैं। पर कारखाने हैं जिनकी बहुत बडी-बडी समस्याए हैं। जहा खिलवाड बहुत बडे स्तर पर होता है।

परेश यूनियन का मेम्बर बन तो गया पर उसे बडी हसी आई। यूनियन का मम्बर होकर क्या हो जाएगा। कोई समस्या हल हो जाएगी। रात को जो गाव और शहर उसके अन्दर जलते रहते हैं, वे नही जलेंगे। उसकी कोठरी की छत ऊची हा जाएगी। गलिया उसे सूनी-सूनी नही दीखेंगी। य सब शरीफ और चौधरी आपस म नही लडेंगे ? मालिक क्या इस क़दर डर जाएगा कि इन्हे आपस म लडाना छोड देगा।

उसे लगता है कि कोई भी समस्या हल नही होगी। हल इसलिए नही होगी कि समस्या कोई है ही नही। ये सब समस्याए लोगो न अपना अस्तित्व बचाए रखने के लिए बना रखी हैं। वे होशियार लोग हैं। समस्या को मिटाकर वे अपना अस्तित्व नही मिटायेंगे। हा, रग बदलते रहेंगे। समस्या मिटती-बनती रहेगी।

रीता से भ्राकर परेश ने कहा, 'मैं यूनियन का मेम्बर बन गया।"
'वही यूनियन जो गरीबो के लिए लडती है।"
हा।"
रीता चुप रही।
'भ्रब तो तुम खुश हो।"
'हा।"
परेश को लगा जसे रीता खुश नही है।
पूछा, 'भ्रब क्या है भ्रब क्यो मुह लटका रखा है।"
"मुझे भरोसा नही होता।"
परेश ने जेब से निकालकर रसीद दिखा दी।
'भ्रब भरोसा हुभ्रा ?"
रीता हस दी, बोली, 'हा।"
कुछ दर चुप रह कर बोली, 'कोई खतरा तो नही इस काम म ?'
परेश ने बताया, 'खतरा ही खतरा है। हडताल होती है। झगडा होता है। जेल जाना होता है।'
रीता ने पूछा, 'जान का खतरा तो नही है ना।'
परेश को वहुत दिना बाद जसे एक झटका सा लगा। कोई भी घटना एक मुद्दत से उसे रोमाचित नही करती थी। पर पत्नी के इस प्रश्न ने उस रोमाचित कर दिया। वह उसे किसी भी खतरे मे झोक देने को तयार है। परेश जानता है रीता उसे कितना प्यार करती है। उसके हल्के से सिरदद म वह किस कदर घबरा उठती है। पर भ्राज वह कोई भी खतरा उठा लन को तयार है। किस प्राप्ति की भ्राशा म ? यूनियन का मेम्बर हो जान से क्या होगा ? य सब यूनियनें क्या कर पाती हैं ? जिन्दगी तो यो ही बडी तेजी से उलट पलट रही है। उसे यूनियन न रोक सकती है न उस परिवतन की रफ्तार को तेज कर सकती है। फिर ?
'यूनियन का मेम्बर हो जाने से क्या हो जाएगा ?"
परेश रात को रीता की चारपाई पर चला गया।
रीता हस दी।
'बताभ्रो ना।"

रीता ने कहा, 'फिर कभी कभी तुम भी मेरी चारपाई पर आया करोगे। हमेशा मुझे ही नहीं बुलाया करोगे।

अपनी चारपाई पर लौटकर परेश को हमेशा की तरह नींद नहीं आ गई। उसे अपने भीतर एक विचित्र परिवर्तन लगन लगा। रीता आज कुछ ज्यादा भभकी हुई थी। कम्बख्त ने हड्डियें चटखा दी। उसक वदन की थकन जसे सूत सूत कर निकाल दी। कितनी थकान उसम भरी पड़ी थी। बहुत दिनो बाद उसे कोई याद आ रहा है। कितना अर्सा उसे उस अनुभूति का स्वाद लिए हो गया है। उसे भूलने की निरन्तर चेष्टा म कसे वह धीरे धीरे खुद को भी भूल गया। फिर रीता मिली। रीता ने उसे नहला धुला कर स्वीकार कर लिया। उसका चेहरा सुधारा। उसे सुरक्षा दी। रीता के अच्छेपन से वह सकुचित होता चला गया। उसके अन्दर जसे कुछ बुझता चला गया, मिटता चला गया।

अब यह नया क्या है? दुनिया तो चल ही रही है। लोग पढते हैं लिखते हैं। बडे आदमी बनते है। चुनाव लडते है। एम० पी० बनते हैं। मत्री बनते हैं ओहददार बनते है। देश विदेश मे लडाइयें छिडती हैं। हजारा लोग मरते है। एक उच्छवास या आश्चय स अधिक उस पर कभी कोई असर नही पडा। उसे सिफ अचम्भा होता है। किसी ने किसी को मारा हो या बचाया हो वह सिफ चकित हो सकता है। आज भी चकित है अपने भीतर होने वाले परिवतन के प्रति भी उसम सिफ चकित भाव है। एक बात उसे और भी परेशान कर रही है। यह परिवतन क्या यूनियन की मेम्बरशिप से आया है?

किस क़दर शोर है। रात काफी बीत चुकी है। रीता काफी देर हुए सो चुकी है। बच्चे सो रहे है। परेश को नींद नही आ रही। चारो तरफ की मियानियो से तरह तरह की आवाजें आ रही हैं। परेश उनमें से किसी को नही पहचानता। उन शब्दो, उन स्वरो के अथ भी नही समझता। फिर भी वह उसे जगाए रखने म समथ हैं। उसके भीतर से उठते परिचित

शोर को रोक रही है।

परेश बहुत बेचैन है।

बहुत दिनो बाद परेश का मन घुटन से भर उठा है।

वह आज यहा और लेटा नही रह सकेगा।

इतनी ही रात बीते वह बहुत दफा बाहर निकल गया है और गहरी काली बादलो भरी रातो मे घूमता रहा है।

आज उसे अपने तमाम पिछले दिन, पिछली बातें बहुत याद आ रही हैं। वह अचानक अपने व्यतीत से जुड गया है। उसका सारा चेहरा काला पड गया है। वह अधेरे मे लेटे हुए भी छत छून की कोशिश नही कर रहा।

वह उस नीची छत के नीचे से निकल आना चाहता है। बाहर हल्की सर्दी है। फरवरी का महीना है।

सारा शहर सोया पडा है। चौडी-चौडी सडकें और लम्बी-लम्बी गलियें लम्बे-लम्बे सास ले रही हैं। रात को मकान और ऊचे दीख रहे हैं। आसमान दिखाई नही देता। अधेरा धुए की तरह छाया पडा है। दुकानो के बराम्दो मे कतार के कतार लाग सोये पडे है। जरा निश्चितता से मरने वाले जनवरी की सर्दी मे मर चुके हैं। अब मरने का कोई मौका नही है। पार्कों मे बत्तियें जल रही हैं। गेट बन्द हैं। कही-कही गेट पर कोई हाथठेला खडा है जिस पर कोइ लेटा हुआ है। मुह पर झल्ली रख।

एक पागल औरत एकदम नगी, तरह-तरह की आवाजें करती घूम रही है।

परेश को देखा तो वह उसकी तरफ लपकी। परेश को डर कर भागना पडा। कितना कीचड उसके शरीर पर जमा है। लम्ब लटकते स्तन जिन पर खरोचो के निशान हैं। जगह जगह कितन घने बाल हैं। उसकी कमर और पेट पर किस तरह मास लटका पडा है।

कितने लोग कितनी चन से सो रहे हैं। कुछ ढके हुए, कुछ नगे। कुछ उघडने को उतावले कुछ अपने ढकने मे असमथ। कौन से मकान म क्या हो रहा है, कौन जान सकता है। किस आदमी के पीछे कितना लम्बा

साया है कस मालूम हो। क्या मालूम हो ? हरेक के माता पिता, भाई बहिन होते है। पुराने गाव, पुराने शहर होते हैं, प्रेमी प्रेमिका होती है, कुत्ते बिल्ली होते है। उन सब की आवाजें सडका पर चिपकी होती है। रातो को इसीलिए घूमने मे मजा आता है। परो मे आवाजें गुदगुदी करती है। पर सुना तो कुछ नही जाता। समझा तो कुछ नही जाता। याद तो दरअसल कुछ भी नही आता। चेहरे उभरते है डूब जाते है। पानी मे दीखते चेहरे की तरह कुछ पहचाना नही जा सकता। आवाजें घुलमिल कर उठती है। कौन उन्ह अलग अलग करे।

'ब्लड चेहरे मिक्स्ड आवाजें।'

सामने के मकान से कोई निकल कर दूसरे मकान म घुस गया।

हो गया काम। रात गुजर गई।

एक औरत रात को कही से आई और अपनी झापडी की जगह गलती से बराबर की झापडी म चली गई।

हल्का-सा शोर हुआ फिर सब शात हो गया।

परेश हस पडा।

कल शायद प्रेस म हडताल का नोटिस दे दिया जाएगा।

'सालाना तरक्की दो। तीन साल का बोनस दो। खाने को रोटी दो।

नारे लगेंग। यूनियन के प्रेसिडेण्ड सक्रेटरी आएग। हडताल होगी। शायद नौकरी छूट जाए। फिर रीता और बच्चे। रोटी और दूध। वह मकान यह झापडी।

परेश चला जा रहा है। एक चायवाले की दुकान खुली है। पर पस ही नही लाया। चलो, आगे चलते हैं। कुछ कुछ धुध पडन लगी है। बल्वा के चारा तरफ कसी नीली धुध इक्ट्ठी हो गई है। उनम मच्छर चिपके रह गए हैं। परेश का बडा मजा आ रहा है।

परदा।'

हा।

पढ़ लिखकर क्या बनोगे ?'

'मैं वकील बनूगा।'

'तुम्ह शम ग्रानी चाहिए, परेश। पढे लिखे ग्रादमी होकर पास पडौस की लडकिया को इस नजर से देखते हो।'

परेश चकित है।

'परश बाबू, ग्रापकी नौकरी ग्राज स खत्म। हम बेईमान ग्रादमी को ग्रपन यहा नौकर नही रख सक्त।'

परश कारखान से बाहर निकल ग्राया है।

'तुम नही समझत परेश तुम्हारे समाज मे ग्रौर हमार समाज म ग्र तर है। तुम्हारे यहा शराब पीना पाप है हमारे यहा हरेक शुभ काम शराब की चुल्लू स होता है। तुम मास नही खाते, लडकी चावल नही छू सकती, तुम '

बीसवी सदी मे क्या नरम-नरम बातें करते हो, कुछ ठोस बात करो। एकदम ठोस।'

पर के नीचे शायद कोई पत्थर ग्रा गया है। परेश का पर मुड गया। रखन म दद हो रहा है। परेश एक दुकान के एक तख्त पर बठ गया है। पर का जरा ग्राराम मिला है। सुबह के शायद दो या तीन बजे हैं। नदी पर नहाने जान वाली इक्का दुक्का बुढिया भजन गाती जा रही है। कुछ पजाबी ग्रौरतें है। शायद गुरुद्वारा जा रही है। एक बहुत बडी भीड मजदूरा की, एक दूसरे को गालिया देती, दहाडती, फिल्मी गाने गाती जा रही है। परेश के पर मे दद ज्यादा बढ गया है। उसका मन है कि इस भीड म मिल जाए। पर ग्रचानक उसे कुछ याद ग्रा गया है। उसका सारा मन गहरी वितृष्णा से भर उठा है।

हा।'

'ग्रच्छा।''

'आपको खबरें मिलती रहेंगी।

चारों तरफ गहरा काला अंधेरा है। खम्भा पर लटके उल्टे बल्ब अंधेरे को चितकबरा, घिनौना बना रहे हैं।

परेश घर की तरफ लौट चला है।

पर म हल्का हल्का दर्द है। हवा मे मीठी कुनक है।

यों हो यूनियन के मेम्बर हो गए।

क़समें खान से क्या होगा। दुनिया बदल जायगी? कुछ नही होगा। आदमी खो आएगा। यों ही पैरों में साँकल डाल देने की बात है।

मालिक भी आश्वस्त होंगे।

पता नही ये लोग क्यों झगड़ते हैं।

इसी समय परेश को रतिया याद आ गई।

कल तक रतिया चौदह साल की थी। एकदम उबली-उबली। एकदम मासूम। एक दिन शादी हुई। कोई पन्द्रह दिन काम पर नही आई। आई तो एकदम जवान थी। चेहरे पर गहरे काले मुहासे। आंखों म काजल की लम्बी डोर। चमकदार आंखें। बदन एकदम भरा हुआ।

उस दिन को सिर्फ साल भर हुआ है। रतिया एकदम प्रौढ़ हो चुकी है। शान्त, स्वस्थ, निरुद्विग्न औरत।

कितनी छोटी उम्र है रतिया की।

और यह रीता

रीता शायद जाग गई होगी।

अगले दिन सुबह उठकर परेश बम्बई हेयर कटिंग सलून पर पहुंच गया। कई दिनों की बढ़ी हुई शव बनवाई। उसका मन किया कि सिर के बाल भी छांट करा ले। पर उतना वक्त नहीं था। वह आज खुश है। आज उसका शव जरा सहूलियत से बनी है। जल्दी भी बन गई है। घर आकर वह देर तक नहाता धोता रहा। उसके बदन की काफी थकान उतर गई। एक नशा-सा एक हैंग-ओवर-सा उसके मन पर लटका रहा। उस वह

नशा कुछ परिचित-सा लगा। कभी वह भी शराब पिया करता था। रात को खूब पीकर, रात के दो तीन बजे तक शोर मचाने के बाद सुबह ग्यारह बजे की थकान कुछ-कुछ यही होती थी। इससे जरा गाढी, जरा कड़ुई जरा काटती हुई। परेश को हसी आ गई। रीता उसका अपने आप हसता चेहरा देख रही है। उसे कुछ डर-सा लग रहा है। आज परेश अजीब लग रहा है। उसने धीरे-से पूछा, 'क्या है ?'

'कहा ?'

'हस क्यो रहे हो ?'

परेश एकदम अस्वाभाविक तरीके से जोर-से हस पडा। बोला, पहले मैं पिया करता था। उसकी याद आ रही है।'

'क्यो ?'

'याद भला क्यो आती है ?'

परेश फिर जोर से हस पडा।

नहा धोकर उसने चाय पी। पास पडोस के लडके-लडकिया स्कूल जा चुके हैं। शोर चारो तरफ कुछ कम हुआ है। परेश की मियानी की खिडकी से हल्की हल्की बदबू आ रही है। परेश चुपचाप खिडकी पर खडा नीचे चौक साफ करती तेरह चौदह साल की तारा को देख रहा है। रतिया उसके जहन म उभर-उभरकर गिर रही है।

'आज तुम्ह जाना नही है। साढे आठ बज रहे है।'

'जाता हू सुनो, दो रुपये दे दो।'

'क्यो ?'

स्कूटर पर जाऊगा, पैदल देर हो जाएगी।'

मेरे पास कुल चार ही तो रुपये हैं। शाम को एक रुपये का दूध आएगा, साठ पसे की सब्जी और ये बच्चे '

'मुझे दो रुपय दे दो।'

'पर '

'दो, बाबा।'

'तुम ?'

'मैं शाम को और रुपये ला दूगा।'

'कहा से ?'

तुम बहस ही करती रहोगी या '

दो रुपये लेकर परेश जरा तेज कदमों से बाहर निकला। चारों तरफ उसने देखा। भीड बढ़नी शुरू हुई है। बहुत से लोग इधर-उधर स्कूटर, टक्सी की तलाश में भाग रहे हैं। स्टैंड पर चलना चाहिए। स्टैंड पर कोई स्कूटर टक्सी नही है। सब आदमियों को लाने ले-जाने में मशगूल हैं।

परेश खडा सोचता रहा। स्कूटरों के पीछे भागता रहा।

करीब नौ बजे उसे स्कूटर मिला। नौ बीस पर वह प्रेस से तीन सौ चार सौ गज दूर उतरा और तेज कदम चलता हुआ प्रेस के दरवाजे पर पहुंच गया।

प्रेस का काम शुरू हो चुका है। चारों तरफ लोग काम में मन लगाए हैं। परेश को किसी ने नही देखा है, किसी ने उसे नमस्ते नही की है। वह चुपचाप आकर अपनी कुर्सी पर बैठ गया है। चारों तरफ देख रहा है। खूब रौनक है। मशीनें किस तरह तेज भाग रही हैं। यामीन किस तरह पोलीग्राफ का ब्रेक पकड़े खडा है—चुपचाप। मशीन के एक पुरजे की तरह। नन्दू अस्तर भर रहा है। मशीन के पखे की तरह उसके हाथ चल रहे हैं। परेश को अच्छा लग रहा है। एक ही तरह से हिलता हुआ सब कुछ।

आज देर कैसे हो गई परेश बाबू ?"

'आज स्कूटर से आया हू।"

फिर तो जल्दी आना चाहिए था ?"

मोहताज आदमी क्या जल्दी पहुंचेगा ?"

"हा, यह तो है। और सुनाइए, आपकी यूनियन क्या कर रही है। कब होगी हमारी तरक्की-वरक्की।'

परेश कुछ चुप-सा रहा।

फिर बोला, 'मुनीम जी, आप भी मेम्बर बन जाओ।"

तरक्की हो जाएगी ?"

मेम्बर नही बनोगे तो कैसे होगी ?"

मुनीम जी जरा सोच में पड़ गए। फिर जरा परेश बाबू की मेज के

पास खिसककर बोले, "डर लगता है परेश बाबू। कही तरक्की भी न हो और परलोक भी बिगड जाए। वसे तग तो परेश बाबू क्या होता है तीन सौ बीस रुपयो मे, चने भी नही चबते। पर बदनामी बडी होती है। फिर कोई मुनीम की नौकरी नही देगा।"

"और कोई काम कर लेना।"

"और मैं क्या जानता हू। बस, सेठ लोगो की सेवा से ही दो जून रोटी मिल जाती है। मैं तो "

परेश समझ गया, कोई पास है। वह उठकर ऊपर चला गया। चौधरी आज रोज से ज्यादा जोश मे है। उसके हाथ मे 'डिमाण्ड चाटर है। वह ज़ोर ज़ोर से बता रहा है—हडताल का नोटिस 'इसू हो गया। तीन दिन का नोटिस। तीन तारीख से हडताल शुरू।

परेश डिपाटमेट के बीचोबीच खडा हो गया।

'परेश बाबू, तयार हो जाओ।'

'आपके हाथ मे बागडोर देंगे।'

परेश ने कहा, मैं हमेशा तैयार रहता हू।'

'गुड, बात हुई ना, अब सालो को पता चलेगा।'

परेश ने कहा, 'हा, पता तो चल जाएगा। पर अपने अन्दर की तमाम चीज़ो को सोच लेना चाहिए। क्या करना है? कैसे करना है? क्यो करना है?'

गुलशन ने कहा, 'बिल्कुल सोच लेना चाहिए?'

एक मीटिंग रखो।

सबने कहा, 'रखो।'

मीटिंग हुई। घरेलू कष्ट सबके सामने आये। यूनियन के सक्रेटरी ने भाषण दिया। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर प्रकाश डाला। लोगो को बहुत-कुछ जानने को मिला। पता चला कि यूनियन का काम सिर्फ़ यहा की गरीबी दूर करना नही है। वह तो सारी दुनिया की गरीबी दूर करने के लिए है। किसी ने कहा, 'गरीबी अमीरी कुछ नही होती, यह राजनीतिक चेतना का प्रश्न है कुछ तरह के लोगो के हाथ से राज्य करने का अधिकार छीनकर दूसरी तरह के लोगो की तरफ खिसका देना हमारा मक़सद

है और-और बातें हुई। जानकारी ने फलाव लिया। इन सब कामो को व्यक्ति की घोर स्वतन्त्रता का प्रयास भी बताया गया। बातें होती, बहस होती फिर तेजी तुर्शी आती। फिर मकसद की बात। तीन दिन म जाने क्या-क्या हुआ। परेश व्यस्त रहा। हडताल की तयारियो मे खोया-खोया सा। कुछ हवा हवा मे, कुछ एकदम अपने आप म। उसे लगा जस उस सहारा मिल गया है।

रीता पूछती 'बहुत देर से क्यो आते हो ?'

काम रहता है।'

'ऐसा क्या काम रहता है ?'

तुम नही समझोगी। यो ही।

रीता खुश होती है। उसे लगता है, कुछ हो रहा है। उसे नही पता चलता न चले पर कुछ होते रहना चाहिए।

पास पडोस मे वह खूब जिक्र करती है। बच्चे पसे मागते हैं, तो तपाक से कहती है, 'और जरा ठहरो, उनके प्रेस म हडताल होने वाली है उसक बाद पसे बढ़ जाएगे तो ज्यादा पसे खर्चा करना।

क्या होन वाला है, रीता तुम्हारे यहा ?"

हडताल हाने वाली है। मजदूरो की न तरक्की होती है, न बोनस मिलता है और उनक साथ बडा जानवरो जसा बर्ताव किया जाता है इस लिए '

'तरे य भी हिस्सा ले रहे हैं।"

'हा, वह लीडर हैं। कहते हैं चाहे मर जाए पर तरक्की बोनस ले कर रहेंगे।

अरी तू पागल हुई है। नौकरी से भी हाथ धो बठेगा। रोक उसे, हडताल क बाद कारखाना खुलता नही "

रीता चुप रहती है। उसे यह अच्छा नही लगता। इन औरतो का जाने कसा स्वभाव होता है। हर बात मे रोक-टोक नुक्ताचीनी। वह उठ कर उनक पास से चली जाती है और घर मे दोनो बच्चो को दोनो तरफ लिटा कर लेट जाती है। सोचती है 'हो जान दो जो होता है, मुर्दो की तरह पडे रहने से तो अच्छा है।'

रात को परेश से पूछती है, 'कहो यह प्रेस ही तो बन्द नही हो जाएगा ?'

परेश दपट देता है, 'कभी कुछ सोचने भी दिया करो । हर समय

रीता एकदम शर्म म डूब जाती है, कहती है, 'सॉरी ।'

अंग्रेजी के दो चार शब्द उसने भी सीख रखे हैं।

दिल्ली बडा शहर है। कितनी तरह के लोग रहते है। कितनी तरह के लोगो की बस्तिया हैं। कितनी तरह की खुशिया है, गम हैं, उदासिया हैं। परेश यहा बरसों से रहता चला आ रहा है। कभी-कभी कहीं जाता भी है। अपने घर से बाहर खुले शहर को देखता है। वापिस आता है तो मन भारी होता है। उस दिन कही से आये' है। तागा घर के बाहर आकर खडा हो गया है। रीता उतर चुकी है। बच्चे आगे बैठे है। परेश और रीता को उतरते देख कर उतावले हो गए हैं। परेश ने दोना हाथ फला कर एक बच्चे को उतार दिया है। दूसरा आगे झुका आ रहा है। वह रोन को हो रहा है, "पहले उसे क्यो उतारा ?"

तागेवाला पूछ रहा है "बाबू जी कही इतना बडा बच्चा देखा है ?"

परेश ने सुना है। सुनकर भी समझा नही है। जेब से दो रुपए निकाले हैं। तागवाले को दिए हैं, "लो।"

"रेजगारी तो नही है, बाबूजी।"

"तो, वहा से ले लो।"

तागेवाला सोच रहा है। नोट उसने हाथ म ले लिए है। परेश का बडा बच्चा सडक पार कर रहा है। सामने कुछ बिक रहा है। उसी तरफ

तागेवाले ने भाग कर उसे पकड लिया है। ला कर फिर उसे परेश के पास खडा कर दिया है। तागेवाला हाफ रहा है "ऐसे न छोडा करो बाबू जी, बच्चे खो जाते हैं।"

"हा।"

तागेवाला चुप है। फिर अचानक मुड कर वह सामने वाले होटल

की तरफ चला गया है।

चारो तरफ किस कदर भीड है। परेश और रीता सडक के किनारे खडे हैं। दोनो के हाथ मे एक-एक बच्चा है।

रीता कह रही है, "कितना बडा शहर है।"

"हा, कोई अनजान आदमी आकर खो जाए तो "

तागेवाले ने लाकर वापिस पसे दे दिए हैं। वह फिर जसे खुद से कह रहा है, "इतना वडा है, कोई दस बारह साल का। गोरा रग, गोल चेहरा, तगडा, स्कूल से आया, बस्ता रखा और बाहर निकल गया, फिर नही मिला। हजार रुपए पर पानी फिर गया, अखबार मे निकल गया, रेडियो पर कही दीखे बाबू तो "

तागेवाला चारो तरफ देख रहा है। उसने परेश के बच्चो को ध्यान से देखा है। ताग पर वठा है। आगे खिसक चला है।

लौट कर उसने नही देखा है। वह शायद छुपा कर आखो स पानी पोछ रहा है।

रीता ने कहा है, 'चलो।"

तुम चलो, ताला खोलो मैं आता हू।"

"अच्छा।'

'पाक म वठा हू।'

परेश आकर पाक मे बठ गया है।

कितने वडे वडे शहर पदा हो गए हैं।

शाम का वक्त है। आसमान मे धूल है। कालापन है और एक तरफ गहरा काला धुआ है। धुए की एक तह पर दूसरी तह चढ़ती जा रही है। परेश के चारो तरफ बच्चे खेल रहे हैं। कोनो पर वठे मा-बाप बातें कर रहे हैं। बच्चा पर नजर भी रखे हुए हैं।

यह शहर एक अर्से से शहर है

पहल इटो की सडकें थी घोडा की टापा से

वह दिन

परेश रात के दो बजे कही स आ रहा है। स्कूटर पर। एक बहुत बुड्ढा आदमी। कधे पर कुछ लादे है। पीछे-पीछे एक दस-बारह साल

का लडका। चुपचाप। सडक एकदम सुनसान है। दूसरा कोई नहीं...। र

'सुनो, इन्हे भी बठा लो।'

स्कूटर बुड्ढे के पास रुका है।

'कहा जाम्रोगे बाबा !'

पजाबी बस्ती।'

'आम्रो, बठ जाम्रो।'

'नही।'

'पसे नही लेंगे।'

'नही, ग्रा काके, जरा जल्दी चल।'

स्कूटर वाला गालियें दे रहा है।

कितनी रात हो गई है।

रात ग्राती है तो सडकें सूनी होने लगती हैं। लोग ग्रपने ग्रपने घरो म डूब जाते हैं। मिलें, कारखाने, भट्टिया चलती रहती है। हजारो मजदूर मिलो के बडे दरवाजे मे घुसते हैं ग्रौर बडी बडी मशीनो को चेतना देकर खुद चुपचाप खडे हो जाते हैं। सब्जिए रात को नही बिकती, सुबह चार बजे से बिकती हैं। शराब ग्रौर ग्रौरत सारी रात बिकती रहती हैं। शाम को पतीली की जूठन बाहर कुत्ते खाते हैं। हरेक के मुह म हड्डी है। शहर सो जाता है। दरग्रसल शहर जाग जाता है। नीली रोशनियो की लम्बी कतारो के नीचे घूमती ठिठुरती छायाग्रो के पीछे की कहानियो को पढने की कोशिश करना छोडने को शहरी होना कहते हैं। सब ग्रलग ग्रलग हैं। कोई किसी से परिचित नही है।

परेश चुपचाप पाक मे बठा है।

सडको पर कितने लोग सो रहे हैं। वह भी यही सो जाये।

शहर के पश्चिमी किनारे को छूकर निकलती नदी की ग्रावाज उसे साफ सुनाई दे रही है।

मीलो लम्बी भिखारियो, जुग्रारियो, बनजारा की बस्ती ग्रौर मीलो लम्बी बाबुग्रो की कालोनी किस तरह ग्रामने-सामने खडी हैं साइकिलें ही साइकिलें

इधर बडे लोग रहते हैं। लॉन म पेड, नीचे सगमरमर की बेंच, स

पर एक लडका और एक लडकी। कारें, तोलो गध, साडियों की खसखस।

मिल मजदूरों के नीचे छोटे-छोटे क्वाटर।

कितना बडा शहर है। कितनी तरह की बस्तियें हैं। कितनी तरह के लोग रहते हैं। सब एक-दूसरे से व रे हुए एक दूसरे से घणा करते हुए, प्रेम के नाटक में डूबे।

'सुनो।

'हा।'

'घर चलो, रात बहुत हो गई।'

'तुम चलो, मैं आता हू।'

'चलो, मुझे डर लग रहा है। शाम को बराबर वाले मकान म चोरी हो गई।'

'हो जाने दो। चोर हमारे यहा नही आएगा।

मैं जाऊ ?'

'हा गीता, घर म जब तक कोई बुलाए नही चोर नही आता। तुम जाओ। मुझे छोड दो।'

मैंने तुम्हे क्या पकड रखा है, पर कुछ तो तुम्हे सोचना चाहिए।

परेश चुप है।

'यहा बैठे जो सोच रहे हो, जिसका ध्यान कर रहे हो सो घर म भी कर सकते हो। कोई रोकेगा नही।

परेश बुझकर राख हुआ जा रहा है तुम चलो रीता। मेरा अभी मन नही है।'

मैं कहा जाऊ '

घर।

'घर खाने को दौडता है।'

'आज कोई नई बात है।

शायद।

'तुम जाओ रीता।'

रीता उठकर चली आई है बस्ती म कोई औरत अब सडक पर नही है। रीता सुबक उठी है। दूर-दूर बत्तियें जल रही हैं। रीता धीरे धीरे

चलकर एक अधेरे दरवाजे म गायब हो गई है। जीने पर खटखट की आवाज आ रही है। दरवाजा खुला है। अन्दर बच्चे सो रहे हैं। रीता ने बत्ती नही जलाई है। बच्चो के पास आकर सो गई है।

परेश उठकर सडक-सडक घूम रहा है।

पानवालो की दुकानें अभी खुली हैं। कही कही कोई खडा पान खा रहा है। दूधवालो की दुकानो के सामने कुत्तो की भीड है। झल्ली वाले मुह पर झल्ली रखे सो रहे हैं। 'नौरोज' खुला है। रिक्शेवाले बठे चाय पी रहे हैं। शोर कर रहे हैं। बुढिया मोटी मोटी रोटियें बना रही है। सडक के मोड पर उसकी दुकान है। कई लोग सामने बठे रोटियें नीली रोशनियो की कितनी लम्बी क़तार उस बस्ती से ज़रा पहले डूब जाती है। बनजारो भिखारियो की बस्ती। झुग्गियें ही झुग्गियें। कही कही दिया जल रहा है, नही तो अधेरा ही अधेरा क़तार मे औरतें बठी हैं। सामने डब्बा, शायद खाली, शायद पानी से भरा

आसमान धुए से भरा है। पवित्र नदी की कलकल करती धारा बस्ती को छूकर निकल रही है।

'आओ बाबू, आठ आने ही देना।'

परेश चुप है।

'दम खम हो तो आओ, बाबू।'

एक ने आकर परेश का पल्ला पकड लिया है।

'हटो।'

'अरी छोड, खस्सी है।'

एक दबी हुई सामूहिक हसी उभर रही है।

'अब जा ना हरामजादे, यहा क्या आया था।'

परेश आगे खिसक रहा है। धौकनी से आग तेज हो रही है। बडे चिमटे से एक आदमी ने लोहे की एक सलाख पकड रखी है। ऊपर अगिया और नीचे घुटनो तक का लहगा पहने एक औरत घुमाकर घन लोहे पर बजा

रही है। लहंगे में से मजबूत छरहरे नितम्ब झलकी दे रहे हैं। परेश

'सुनो, चलो, मुझे बहुत डर लग रहा है।

'जाम्रो रीता, दुनिया म कोई अकेला नही होता, रह नही सकता।' बाबुग्रो की बस्तियो म कितना सपाट सन्नाटा है। मोटी मोटी दीवारो के पीछे सब सो रहे हैं। नीद म जाने क्या-क्या चल रहा है। हसना मना है। रोना मना है। सपना देखना किसी को आता नही। सब सिफ यही करते हैं। हिम्मत करने पर सजा मिलती है। दीवारें बहुत मोटी नही हैं। चीखने पर आवाज बाहर निकल जाएगी और फिर शहर म चीखने से लोगो की नीद डिस्टब होती है। ना, वह नही।

मोटी मोटी दीवारो के पीछे हमेशा परेश को लगता है, कोई सुबक रहा है। पर इतना लम्बा लान, इतनी मोटी दीवारें, कमरे दर कमरे पार कर आवाज कैसे निकले। परेश कुछ समझ नही पाता। फिर चारो तरफ से उठता मशीनो का शोर सब कुछ दबा रहा है। पहले भी कुछ आवाजें यो ही डूब जाती थी, आज भी कुछ आवाजें यो ही डूब जाती हैं। सुनो

एक आदमी तेज कदमो से निकला चला जा रहा है।

'क्या हुआ ?'

बहुत से लोग उसके पीछे हैं।

'क्या हुआ ?

'उसने एक घर म घुसकर एक औरत का खून कर दिया।'

सब आदमी बराबर से निकलकर उससे आगे निकल गए हैं।

अधेरा किस कदर बढ गया है।

परेश के कदम धीमे हो गए है।

'सुनो, चलो मुझे डर लगता है।'

रीता कमरे में बन्द सा रही होगी। उसका खून नही हो सकता।

परेश रुक गया है। एक दुकान के तख्ते पर बठ गया है। रीता से ब्याह किए कितने साल हो गए। कितने लोग पीछे छूट गए। अब तो बस वही हैं। या उसके कारखाने की मशीनें। परेश थक गया है। टागें भारी हो

गई हैं । उसने आँखें मूद ली हैं । रीता के पीछे खड़े लोग दीख रहे हैं। कितने सारे लोग हैं। वे हर समय उसकी चेतना मे तैरते रहते है । कोई आवाज उन्हें मिटा नही सकती । उनसे बडा डर लगता है। उनके होने से भी, उनके मिट जाने से भी । रीता नगण्य है। वे लाग

'यहा क्या बठे हो ?''

' '

'जाओ यहा स, नही ता '

सुबह हो रही है। मिला म स ढेर सारा मवाद जसा धुआ उभरा है। गली में सकडा अगीठियाँ आ गई है । वातावरण की रगो में धुआ रिस रहा है। चारो तरफ स धुआ उभर रहा है। बनजारो की बस्ती म भट्टिया के कोयले धधक रहे हैं। भट्टी धधकेगी। घन घूमेगा । औज़ार बनेगा। कोई उस औरत की तरफ भरी नजर से देखेगा तो औज़ार पेट म उतर जाएगा सारे शहर ने अगडाई ली है। आसमान के धुए की गध पर शहर जाग रहा है। मोटी दीवारो के सब दरवाजे ब द है। धुआ आसमान पर से तरता जा रहा है। नीचे नीली पोशाक में लिपटी एक उजली अलसाई नवविवाहित पत्नी अगडाई लेकर जागी है। छत की तरफ देखा है। फिर एकदम अचानक पास पडे रेशमा आदमी से लिपटकर सो गई है। शहर का यह हिस्सा जब तक आसमान का धुआ निकल नही जाएगा नही जागेगा।

परेश घर आ गया है।

वह पहले घूमा करता था। अब सोने लगा है।

'आ गए ?'

'हा।'

कहा गए थे ?'

परेश चुप है।

'चाय लाऊ ?'

'हा।'

'रात मुन्न का बुखार हो गया।'

'अच्छा ?

'पर दबा दू ।'
'नही ।'
'आज प्रेस नही जाओगे ।'
'इतवार है ।'
'सोओगे ?'
परेश सो गया है ।
फिर आलसी हो गया है ।
शहर म आलसी होने से ही काम चलता है ।
पर अब हडताल होने वाली है ।
कुछ नया, कुछ न समझने योग्य, कुछ ।
रीता चिन्तित है । प्रेस बन्द हो गया तो क्या होगा ?

सुबह परेश जल्दी उठकर नहाने धोने बठ गया है । नल खुला है । नीचे बाल्टी भर चुकी है । पानी की धार नीचे पानी पर गिरकर काफी शोर कर रही है । आज से हडताल शुरू है । रामचन्द्र, शरीफ, गुलशन, किसन आज अन्दर नही घुसेंगे । परेश को लग रहा है जसे कुछ उसके दिमाग को खुरच रहा है ।

उसने नल बद कर दिया है । पानी पर से उभरती आवाज़ बद हो गई है । एक शून्य कुछ सकिडो के लिए व्याप्त हुआ है । उसे शांति मिली है । पर वह फिर सोचने लगा है, सब लोग बाहर खडे रहगे । रतिया देखेगी । आसपास के सब लोग देखेंगे । अदर मशीनें चुप पडी होगी । इतनी बडी बिल्डिग म सन्नाटा होगा । मालिक अदर केबिन म बठे होंगे ।

सन्नाटा हा सन्नाटा तो उसके अदर भी बहुत होगा धार के बिना उसने यहा बहुत सन्नाटा होता है

'चाय लाऊ, अब उठो ना, नहा तो लिए, अब क्या सारा दिन नहाते हा रहोगे ?'

'उठता हू ।'

आज क्या सोच रहे हो, चिंतित हो ?'

नहीं तो सुनो, तुम कितने दिन भूखा रह सकते हो ?'

रीता ममभ गई। उसन अपनी अगीठी में मन लगा लिया। बोली, 'हो ही जाना है कुछ न कुछ। कोई मर नही जाता। तुम शुरू करो।'

परेश ने नल फिर खोल दिया। आवाज की गम लहरें उठकर उसके दिमाग मे फल गइ। वह बाल्टी के पास स उठ गया। कपडे वदलने लगा। नीला कच्छा उसकी टागा स चिमट गया। उसने उसे खीच कर उतार फेंका। तौलिये से वदन छिल जाने की सीमा तक रगडा। फिर चप्पल पहन वह अदर आ गया। कपडे वदले। बीच बीच म दीवार पर टगे शीशे म अपना मुह देखता रहा। उसके कमीज के बटन जरा काजो मे बडे हैं, वडी खीच-तान करनी पड़ती है।

'तुम य काज ठीक नही कर सकती ?'

'भूल गई, आज पहन लो, कल ।'

'हर काम कल पर छोड देती हो, आज जरा-सी सहूलियत नही दे सकती, कल क्या दोगी कल का कुछ पता है।'

रीता अचानक रोने लगी।

'रो क्या रही हो ?'

रीता चुपचाप रोती रही।

'अच्छा, तुम रोओ, मैं चलता हू, य रोना '

परेश झटके से घर से बाहर निकल आया। तजी से सीढिया से उतर गया और बाइ तरफ मुडकर उसने महसूस किया कि वह किसी बहुत गहरे क्षण के दबाव स बच गया है। वह सोचता है यह क्षणो के वजन म इतना फक क्यो होता है। एक क्षण इतना खिचाव देन वाला और एक क्षण जसे तरा द। परेश को हसी आ गई। कोई क्षण ऐसा उसक जीवन म ता हुआ नही जा तरा द। वह जोर से हस पडा, हुआ है' पर आज वह भूल गया है। कुछ उसके ततुओ से चिपका न रह सका। और रीता— ओह ! उतना बच्चा होना कितना बुरा होता है। आदमी को कुछ करने नही देता। उसा

परेश उसी तरह चल रहा है जसे रोज चलता है।

परेश प्रेम क बहुत पास पहुच गया है।

वह अपनी परिचित चाल स चलने लगा है।

दुकानें खुल रही हैं। बाजार मे चहल पहल शुरू हुई है। परेश को लग रहा है कि सभी दूकानदार अनिच्छा स दुकानें खोल रह ह। उन सब का मन आज उचटा-उचटा है। सडकें वगरह उसे आज ठीक स साफ नही लगी। रतिया कभी-कभी एकदम बगार टाल देती है। सामन प्रेस आ गया है। सभी लाग बाहर खडे हैं। नारे लगा रह हैं। ठठाकर हस रहे हैं। जोश से भरे है। आपसी मनमुटाव आज कहीं नज़र नही आ रहा। सब की आवाज एक ही समान बुलन्द है।

परेश बाबू आ गए।

सबने जोर से पुकारा।

परेश को लगा जसे वह भीतर स कही शर्मिदा है।

सामने प्रेस का दरवाजा खुला है। चुपचाप खडी मशीनें दिखाई रही हैं। इस समय तक य सब मशीनें साफ सुथरी हाकर चलन लगती थी। आज इनका घूघट तक किसी न नही उघाडा ह।

परश के चारो तरफ की भीड घमड से फूली नही समा रही।

शरीफ कह रहा है, बडी मिली बवा हो गई।'

यामीन ने सिसकारी भरी, अरे मेरी पालीग्राफ भी टाग पर टाग चढाए खडी है।'

नद्दू ने छाती पर दुहतड दी, 'और मरी विक्टोरिया—हुच हुच, हुच हुच्।'

सबको सनक सवार हो गई। जोर-जार म शोर मचाना शुरू कर दिया।

'हाय, मेरी विक्टोरिया, हाय मेरी बफकाक।

'हाय रे मेरी बडी मिली ओए होए मेरी पोलीग्राफ।

'इनके हम मालिक है दल्लालो क फोडो सिर।

गाना तेज हो गया। भगडे ने गति दी। सारा मुहल्ला मारे हसी के लोट-पोट हा गया। हडताल शुरू हो गई। अदर केबिन म मालिक लोग भी बठे हसते रहे। बार बार मगाकर चाय पीते रह।

एक ने एक से कहा, तेरे यहा लौंडा हुआ है हिजडे नाच रहे है।'

उसने हसन की कोशिश की, बोला, हा।

पहला दिन यो ही बीत गया। शाम को बडा-सा जुलूस निकला। तमाम देश के पूजीवादियो को गालियें सुनाई गइ। शहर के उस हिस्से मे दो घटे तक जुलूस घूमता रहा। हर प्रेस के सामने नारे लगे। वहा के मजदूरो से सहानुभूति मागी गई। शाम को एक बडा जलसा प्रेस के सामने हुआ। भाषण हुए, ठहाके लगे। कुछ नए वायदे हुए। परेश की हिम्मत को दाद दी गई। उसे अधिक सम्मान मिला। कुछ ने उसे मालिको का जासूस बताया। परेश चुप रहा। आज तमाम दिन वह बहुत भीड भाड मे रहा। इस समय बहुत थका है। उकताया हुआ है। घर जाना चाहता है। पर अभी शायद देर लगेगी। सब लोग घिरे बठे हैं। सब धुन म हैं। सब अभी कुछ देर और यहा रहना चाहते है।

सब लोग प्रेस के बाहर ही पसर कर बठ गए। मालिक लोग प्रेस बद करके जा चुके हैं। काफी देर 'हा हा, ही ही' होती रही। 'बडा मजा आया। साला कसे देख रहा था, जैसे खा जाएगा।' 'आखें निकाल लेता साले की। हाय री, मेरी पोलीग्राफ। यार जेब मे माया नही है, नही तो, आज तो हा।'

परेश का सारा मन किरकिरा हो रहा है। वह ज़ोर-ज़ोर से हस देता है, चुप हो जाता है, बिना बात किसी भी बात पर मोटी-सी गाली दे देता है और फिर चुप होकर बठ जाता है।

'परेश बाबू, आज कसा रहा?'

'अरे मजा आ गया। अच्छा भई, चलो अब।'

पीछे से किसी ने धीरे से कहा, 'हा भाई चलो, परेश बाबू को कोठी पर फोन भी करना है।'

सब हस पडे। चौधरी ने मजाक म ही उसे धमकाया। 'साले, चीर के फेंक दूगा, अगर किसी दिन फिर मजाक की।'

सब उठ गए हैं। ज़ोर-ज़ोर से कपडे झाडे हैं।

सब अलग अलग हो रहे है। कल समय से पहले आकर ज़ोर-ज़ोर से नारे लगाने की बातें कर रहे हैं।

एक मोड पर परेश भी अकेला रह गया है।

कितना अधेरा छा गया है। अधिकाश दुकानें ब-द हा गई हैं। एक

पान की दुकान पर रेडियो बहुत ज़ोर से चल रहा है।

परेश का सारा मन, सारा शरीर आज रेतीला है। आज यह कैसा दिन था। एकदम अलग। एकदम शोर से भरा हुआ। हवा कुछ तेज़ है। धूल उड़ रही है। अंधेरे में दीखती नही पर उड़ रही है। कितना शोर था कितनी धूल है कितना अंधेरा है।

यह सब क्या होता है। ये इतने मोड़ क्या आते हैं ?

परेश को हल्की-सी हसी आ गई। नही, वह अपना भूत याद नही करना चाहता रीता सो गई होगी। इतजार कर रही होगी कौन किसका रीता औरत है हा, बच्चे सो गए होगे।

पता नही परेश रोज से धीरे चल रहा है या तेज़ चल रहा है। रात लेकिन रोज से काली है। सभी होते हैं—मा, बाप, बहिन भाई, दोस्त। सब पीछे छूट जाते हैं। देखो, इस प्रेस का क्या हो। शायद सबका निकाल दें। फिर प्याज़-रोटी खानी पड़ेगी। परेश को धुरधुरी-सी आ गई। साल भर तक उसे प्याज़-रोटी खानी पड़ी थी। कभी कभी वह भी नही। रीता शात रही बच्चे रोते रहे। परेश को लगा, वह पागल हो जायगा। गर्मियो मे प्याज़ रोटी, चिकल चिकल। दातो म से कितनी भद्दी आवाज़ आती थी।

अब कुछ खास दूर नही है, घर पास आ रहा है।

परेश घर के पास की सब चीज़ो से नई तरह से परिचय करना चाह रहा है।

गली की सब चीज़ें जहा की तहा हैं। अंधेरे म कुछ चीज़ें डूब रही हैं, कुछ उभक रही हैं। सड़क के बीचोबीच मखमली की खाट पड़ी है। उसके एक तरफ उसकी मा की खाट है, एक तरफ बाप की। दोनो की सुरक्षा में इस समय सिर्फ खाट है। खाट की चादर आधी नीचे है। चादर के एक कोने को पिल्ला चबा रहा है।

चलते हुए एक बार मखमली के हाथ से किसी का हाथ छू गया था। बहुत शोर मचा था। उस आदमी को जाने कितना रुपया मखमली के बाप को और कितना रुपया थाने म देना पड़ा था।

मखमली की मा आज भी कहती है, रात चाहे कितना भी गहरी हो चाल देखकर चेहरा पहचान लेती हू। भला दूसरे की बहू-बेटी को छेडना कोई खेल है। मैंने तो छोड दिया हरामजादे को, नही तो फासी लगवा क ही छोडती।'

सारी गली में जो जहा है, वही है। एक जगह लेकिन कुछ बदली बदली लग रही है। गली के मोड के खम्भे के नीचे रीता खडी है। उगली पकडे बडी बच्ची है। रीता चुप खडी है। परेश को उसने देखा है तो एक दम मुडकर घर की तरफ चल दी है। परेश पीछे-पीछे घर में घुस रहा है। घुसते हुए उसने पीछे मुडकर देखा है, मखमली चादर ठीक कर रही है।

घर म बत्तियें जगी पडी हैं।

रीता न एकदम आकर स्टोव जला लिया है। वह बहुत जल्दी खाना गम करके परेश को दे देना चाहती है।

'बाहर क्या खडी थी ?'

रीता चुपचाप खाना गम करती रही।

यह इतनी मनहूस शक्ल क्या बना रखी है ?'

रीता ने स्टोव पर स सब्जी उतार दी और तवा रखकर पराठे गम करने लगी।

हडताल आज से शुरू हो गई।'

अच्छा ?'

हा।'

कोई झगडा तो नही हुआ ?'

'अरे यह हिन्दुस्तान के कारखाने की हडताल है। इसमें क्या झगडा होना है। यहा के मजदूर बडे दाना हैं।'

रीता चुप रही।

परेश खाना खा रहा है। उसके ठीक सामने रीता बैठी है। उसके तमाम चेहरे पर एक नमी है। नमी की एक तह जमी हुई है।

तुम आज दिन भर रोई हो ?'

रीता चुप है।

परेश कह रहा है, मुझे भी कुछ अच्छा नही लगा। सारा दिन बाहर

बठे रहे। शोर मचाते रहे। गालियें देते हू। कारखाने की तमाम मशीनें आज बद रही। तुम्हे मालूम है, मुझे कैसा लग रहा है। जैसे कोई आदमी रोज रात को कही गाना सुनने जाता हो और एक दिन न गया हो। मालिक पसा कम देते हैं बोनस नही देते, तरक्की नही देते, तो खुद को क्यो मारते हो, अपनी नब्ज ही क्या बद करते हो। मैं ज्यादातर चुप रहता हू, बातें मुझे वास्तव मे कम समझ मे आती हैं, पर यह सुनो, आज तुम उदास क्यो हो, इतनी कि

और खाना लाऊ?'

'नही यह अन्याय है रीता। तुमने मुझे गलत काम म धकेल दिया हैं।'

रीता बतन उठाकर बाहर रख आई।

'मैं सोचता रहा, मालिको के यहा फोन करू, उनस कहू, म इस सब मे शामिल नही हू।'

रीता ने कहा, ऐसा न करना। यह हद है।'

परेश ने कई गिलास पानी पिया है। कपडे उतार कर फेंक दिए हैं। एक बच्चा जो उसके पलग पर लेटा है उसे भी रीता की खाट पर लिटा दिया है। फिर एकदम चित दोनो टागो को खब चौडी कर पलग पर लेट गया है। दोनो हाथ ऊपर उठाकर छत छूने की कोशिश की है। रीता की तरफ ध्यान स दखा है। फिर आखें बन्द कर ली हैं।

बत्ती बुझा दू।'

'नही।'

राता थाडी त्रस्त है।

रीता, मुझे यह असन्तोष और शराबा अच्छा नही लगता है, ठीक है ना?

रीता खुद को बचा रही है। कह रही है हा।'

सोच रहा हू, कल अलग रहू।'

रहा।

रीता, तुम क्या चाहती हो कहती क्यो नही हा?'

मैं क्या चाहती।'

'तुम चाहती हो, बोलो।'

रीता ने ज़िद मे कहा, 'नही, मैं क्यो कुछ चाहूगी। भगवान का दिया सब कुछ है। असमर्थ आदमी क्या देगा।'

'तुम हमेशा मेरी बात काटती हो, मुझे बेवकूफ समझती हो, पर मैं '

'सुनो, बत्ती बुझा दू ?'

'बुझा दो।'

अधेरा हो गया है। परेश निढाल लेटा है। छत उसे दिखाई ही नही देती इसलिए उसे छूने की कोशिश करना भी उसने छोड दिया है। इस समय कही से कोई आवाज़ भी नही आ रही, जिस पर वह ध्यान लगा सके। रीता चुप है। उसके सास की आवाज़ भी नही आ रही है। परेश का मन बहुत भारी है। वह कुछ बोलना चाहता है। रीता न सुनती है, न जवाब देती है। इतने अधेरे मे नीद आने से पहले परेश को चुप रहना बहुत भारी पड रहा है। उसके सारे शरीर मे एक अकुलाहट भर रहा है।

'रीता।'

'हा।'

'मैं आ रहा था, मखमली अपनी चारपाई से गायब थी।'

रीता चुप रही।

'तुम समझती नही रीता, हमारे शरीर म 'एब्सिस' हो गया है, समझी, शोर मचाने से क्या ठीक हो जाएगा ?'

'मत मचाओ। सो जाओ।'

परेश चुप हो गया है। बहुत देर चुप लेटा रहा है। अचानक उसके सारे शरीर मे जाने कसा एक विष भर गया है। कुछ हिंसात्मक वह करना चाहता है। कही कुछ नही जिसे वह नष्ट कर सके। चारो तरफ हाथ फेंकने पर भी कुछ हाथ नही आएगा। रबर का बना कोई छल्ला हो। दो उगली एक तरफ, दो उगली दूसरी तरफ वह फसाए। छल्ले को फलाए और फलाता रहे। जब तक कि वह टूट न जाए, फट न जाए। परेश के भीतर की अकुलाहट बढ रही है। उसने क्या नही देखा। किस किसको क्या-

क्या अन्याय सहन नही किया। पर वह जानता है कुछ नही होगा। कुछ

'रीता।'

'हा।'

'आओ, थोडा शारीरिक श्रम करें।'

'नही।'

'नही नही, आओ।'

परेश की आवाज भारी है। उसका स्वर लड़खडा रहा है।

'मैं नही आती, मेरा मन नही है।'

'मेरा है, आओ।'

'नही।'

परेश हिल गया है। उसने दाया हाथ बढ़ाकर रीता को गले से पकड लिया है। उसका ब्लाउज झटका देकर बीच से चीर दिया है। पेटीकोट के नाडे को खोला नही है झटका देकर तोड दिया है।

क्या पागलपन है?'

एक ही झटके म रीता परेश क पलग पर खिसक आई है। परेश ने अपनी दोना बाहा और दोना टागा म उसके शरीर को दबा लिया है और दांत जोर से उसके गाल पर गडा दिए हैं।

रीता जोर से चीख उठी है।

'चीखो मत कोई सुनेगा तो बुरा लगेगा, होगा कुछ नहीं।

गाल पर खून निकल आया है।

परेश म एक आग उभर रही है। वह पागल हो उठा है। वह जगह जगह दात गडा रहा ह, खून उभर रहा है। जगह बदल रहा है।

रीता की सिसकियों और चीखो से कमरा सुर्ख हो उठा है।

वह कुछ होने देना नही चाहती। लड़ रही है।

परेश थक गया है।

'यह तुम्हे क्या हो गया है?'

'मालूम नही। परे आज होगा जरूर। तुमने मना क्यो किया।

'मरे मारे वदन म दद '
'बाद म ठीग हो जाएगा।'
म दाग ध व, यह खून '
'समय पर सब ठीग हा जायगा।'
तुम '
सब कुछ हाता है।

परेग थग कर सो गया है। रीता की रग रग मे दद है। वह रो रही है, कराह रहा है। उसन बत्ती जलाई है। शीशे मे अपना मुह देखा है। उसे डर लग रहा है। परेग थककर सो रहा है। उसका चेहरा कितना सलौना लग रहा ~। उमम डर लायक कुछ नही है। रीना खाट पर लेट गई ह। बत्ता जग रही है। रीता को बहुत डर लग रहा है।

आज तक कभी ऐसा नही हुआ।

रीता चाहती है, बत्ती बुझा दे। बच्चे दिखाई न दें।

फिर और डर लगेगा।

बच्चा क पास खाट पर जगह बहुत कम है।

रीता पले पडे परेश को एक तरफ सरकाकर उसके पास ही लट गई है। वह चाह रही है कि उठकर बत्ती बुझा दे। पर बदन म बहुत दद है।

रीता का नीद आ रही है।

सुबह परश ने शेव बनवाई। जल्दी-जल्दी नहाया और नाश्ते पर बठ गया। आलू के रायते के साथ पराठे उसे बहुत अच्छे लगे हैं। वह खाता जा रहा है और रीता के चेहरे की तरफ देखता जा रहा है। उसे ताज्जुब हो रहा है। तमाम चेहरे पर निशान हैं।

सारी, रीता।'

रीता पराठे बना रही है। अदर ही अदर यह छोटा-सा वाक्य उस छू गया है। परश कभी ऐसा नही करता, ऐसा नहीं कहता। वह चुप रह सकता है। पर 'गल्ती हो गई' नही कह सकता।

परश फिर जोर देकर कह रहा है, 'प्लीज रीता, वेरी सॉरी।'

रीता इतनी अंग्रेजी समझ लेती है।

'माफ नही करोगी?'

रीता ने कहा, क्या हो गया है तुम्हे ?'

'मैं रात जानवर हो गया था।'

'छोडो।'

'तुम्हे बुरा लगा।'

'बदन म दद है, बुरा क्या लगना है।'

'पता नही मुझे क्या हो गया था।'

रीता की आखो में काजल छलक आया, 'तुम्हे देर नही हो रही, खाओ और जाओ यहा से।

परश ने कहना मान लिया है। जल्दी-जल्दी तयार होकर वह घर से बाहर निकल आया है।

उसका खयाल है कि आज वह बस से चले।

बस स्टड पर पहुचते ही उसे बस मिल गई है।

बस भी उसी रास्ते से जाती है जिससे वह रोज पदल जाता रहा है।

आज उसे अपनी तमाम परिचित चीजें अलग लग रही हैं।

कितनी तेजी से चीजें पीछे जा रही हैं।

पर वह बाहर देखना नही चाहता। उसे रात की बात पर बहुत अचरज हो रहा है। उसके बारे में वह ज्यादा सोचना नही चाहता। सामान्य तौर पर वह आज रोज से खुश है। उसके अदर रोज जसा तनाव नही है। बस में भीड़ बढ रही है। उसका स्टॉप आने म अभी देर है। वह शात भाव से खिडकी म बाह फसाए बठा है।

आदमी कहा से कहा पहुच जाता है।

क्यो पहुच जाता है? वापिस फिर क्या नही जा सकता? क्यो निरतर वापिस जाना चाहता है। बस कितनी तेजी से आगे जा रही है। धूप अभी निकली निकली है। उस पर तिरछी होकर पड रही है। माच अप्रल की धूप। जसे बीच से चीरती है। अदर लगता है अटेरन पर धागा उलझ कर लिपट रहा है। किस क़दर धागा लिपटा है। कितना बडा अटेरन है। लिपटे धागे मे कितनी गाठें होगी। दीखती ही नही। समूचा स्वरूप बस

ऊचा-नीचा है। ऊपर से साफ सुथरा, सतुलित

'टिकट।'

'रामपुर।'

'रामपुर क्या ? कहा से बठे हो ?'

'सहारनपुर से ?'

'सो रहे हो या जाग रहे हो ?'

परेश जाग रहा है। कडक्टर की तरफ देख रहा है।

'पागल हो ?'

नही।'

'तो बोलो ना कहा का टिकट दू ?'

'सदर बाजार।'

सहारनपुर से रामपुर।

एक दिन वह पुल के कीचड मे गिर पडा था। सारे वदन पर कीचड लिस गया था। लोग कितना हसे थे।

'परेश।'

'हा।'

थक गए हो।'

नही तो।'

अच्छा, चलें।'

प्रेस सामन आ गया है। नारे लग रहे है।

परश क पर ठिठक गए हैं। वह नुक्कड की पान की दुकान पर खडा होकर पान खाने लगा है।

परेश को देखकर सबने नारे लगाए हैं। जोर जोर से नार लगाए है। नाचने-कूदन लगे हैं।

परेश को ये सब लोग भूत जसे लगने लगे हैं। हर चेहरा उसे किसी और के गदन पर फिट चेहरा लग रहा है। उस लग रहा है जस इन चेहरो पर न ग़म है, न खुशी है, बस लकडी से बन चेहरो की तरह य मुह

बना रह है। बल्कि इनका मुह कोई और बना रहा है। यह एहसास उसके जहन पर हावी होता जा रहा है। उसने पान खा लिया है। पान वह बडी निदयता स चबा रहा है। उसके चेहरे पर हिलता हुआ जबाडा उसके चहरे को किसी जगली जानवर जसा बना रहा है। उसकी आखें राज स छोटी हा गई हैं। वह उछलती-कूदती भीड को देख रहा है।

आखिर वह भीड मे शामिल हो गया है।

आदमी न चाहते हुए भी भीड म क्यो शामिल हो जाता है ?'

हडताल का चलत कई दिन बीत गए हैं। परेन अब उसकी पूरी पकड म है। पर राज घर आकर, घर में निपटते सामान की सूचना पाकर, और अनिश्चित भविष्य को सूघ कर वह यही सोचता है कि आदमी न चाहते हुए भी भीड म क्या शामिल हो जाता है।

पर हो तो जाता ही है।

होना तो पडता ही है।

हाना तो शायद चाहिए ही

योगेश गुप्त

जन्म 7 दिसंबर 1931 (सहारनपुर)

योगेश गुप्त की अन्य रचनाए

उपन्यास

- उनका फैसला
- उपसंहार
- अंधेरा और अंधेरे
- अनायास
- अकारण
- अनदीखी झील
- चारुलता
- पहला अंत
- स्वप्न-दंश
- आलमा

कहानी संग्रह

- अबरक के फूल
- मेरे अंतरिक्ष
- The Skyscraper
  (Transcreated from the original b
  Mridula Garg)

आलोचना

- खोजबीन
- त्रिकोण दृष्टि